मधुराद्वैताचार्य श्रीगुलाबरावमहाराज की हिंदी में रचित सूक्तिरत्नावली की ६ वी यष्टी

स्वमन्तव्यांश-सिद्धान्त-तुषार

श्रीमहाराज का अवतार-प्रयोजन

(प्रश्नोत्तर रूप)

' युक्तीने पटवून देण्याचा माझा बाणा आहे '

०

प्रकाशक

॥ श्री ज्ञानेश्वर मधुराद्वैत सांप्रदायिक मंडळ, दहीसाथ, अमरावती ॥

कलिवर्ष : ५१०९ / इ. स. २००७

रु. ५०

स्वमन्तव्यांश-सिद्धान्त-तुषार : अनुक्रम

विषय	ओवी
मंगलाचरण	१
शुकशिष्य स्वामी चरणदासकृत व्रजचरित्रवर्णन	१
व्रजका मुख्यत्ववर्णन	६
व्रजवर्णन	९
व्रजमंडल सुदर्शनचक्र-स्थित	११
अतींद्रियदृष्टीसेही दृश्य	१५
व्रजस्थ भगवल्लीलावर्णन	१७
वियोगवर्णन	१८
वनोपवनवर्णन	१९
व्रजका दृश्यत्वनिराकरण	२२
अदृश्यत्व-साकारत्व-नित्यत्व	२२
दिव्यदृष्टि : भक्ति से प्रकाशित भगवद्दशावर्णन	२५
विरह : बाहर दुःखाभास और अन्तर में परमानंदप्राप्ति	२९
संयोग-दशा वर्णन	३१
वियोग-दशा वर्णन	३२

प्रश्नोत्तरी	**प्रश्न**
तुम कौन हो ?	१
युवा भक्ति के जरठ पुत्र	३
गौणी और परा भक्ति	४
श्रुतियाँ कृष्णावतार में गोपी	८
उपासना और भक्ति	१०
पूर्ण सगुण	१३
षड्गुणैश्वर्य का वर्णन	१८
अल्प ऐश्वर्यसे जीवका तोटा	१९
जीव की पूर्णता	२३
अनादि अविद्या : आवरण और विक्षेप	३१
जीव क्या है ?	३७
भक्तीसेही व्यापक में प्रवेश	४१
व्यतिरेक में - निर्गुणोपासकों कों कष्ट	४३
सगुणकी व्यापकता	

४८
सगुणसाकार/निर्गुणनिराकार ४८
सगुण नित्य कैसा? ५७
माया का स्वामी ५८
तूला-अविद्या, मूला-अविद्या ५८
वृक्षादिक जीवों की अविद्या ६१
अविद्याका ज्ञान नही होता, वह अनुभव से सिद्ध है ६३
आवरण-विक्षेप की निवृत्ति ६५
दृष्टिसृष्टिवाद में भक्ति ७१
अधिकारियों का प्रारब्ध ७५
भक्तों का प्रारब्ध ७७
मधुसूदनजी / अद्वैतसिद्धी ७८
अविद्यालेश / अप्पय्य दीक्षित ७९
जीवन्मुक्ति / विदेहमुक्ति ८०
तत्त्वज्ञान,वासनाक्षय,मनोनाश८०
गुरूकी कृपा ८०
अविद्या का अधिष्ठान ८३
अवतार ८६
अवतार और मुक्तों में भेद ९०
विदेहमुक्ति में भक्ती ९३
अवतार के लक्षण ९५
अवतार का नित्यत्व ९७
प्रकृति अरु माया ९९
अवतार के प्रकार १०१
पूर्णावतार में शिष्टत्वलक्षण १०४
षड्गुणैश्वर्य का वर्णन १११
तटस्थ और स्वरूपलक्षण ११२
तटस्थलक्षण ११२
माधुर्यभक्तीही क्यों ? ११४
भक्ति में संयोग-वियोग ११६
तर्क कहां करें ? ११८
ध्यान : कर्तृतंत्र / वस्तुतंत्र १२०
विद्यारण्यजी से समन्वय १२०
परोक्षज्ञान संवादिभ्रम नही १२०

भगवत्कृपा की अपेक्षा १२०
ध्यान में सगुण वस्तुतंत्र १२०
मधुसूदन : विरोधपरिहार १२०
ध्यानमूर्तीकी सत्यता १२०
अद्वैतभक्ति १२२
गौणी और पराभक्ति १२३
आत्मनिवेदन भक्ति १२५
चार मनोसंवेग १२६
निर्गुणोपासना वेद में क्यों? १२९
सगुण की हृदय में स्थापना १३०
अज्ञानांश-ज्ञानांश साथसाथ १३१
असभासवाद : अवच्छेदवाद का महाराजद्वारा समन्वय १३१
जीवका स्वरूप १३१

प्रश्न १३१ में अन्तर्भूत

१०० वेदांतसंज्ञा १३१
(१) व्यवस्थिति
(२) संकर
(३) अर्थापत्ति
(४) प्रतिबिम्ब जीव
(५) ईश्वर : परमात्मा : बिम्बभूत और विद्यारूप
(६) विद्या
(७) स्वरूप प्रमाद
(८) अविद्या
(९) अप्रमाद
() प्रमाद
?????????
(१०) मैं-शब्द का प्रयोजन
(११) अबंधकारक अहम्
(१२) बंधकारक अहम
() अविद्या में अहं
() विद्याकृत अहं
() अहंता
() बाह्य के अपेक्षा स्थिर अहं
() परम स्थिर अहं
() शरीर की सत्य प्रतीती
() परमात्मा का शरीर
() बिम्बरूप स्वतंत्र
() ईश्वरसंकल्प
(२२) संकल्प का फल जीव को
() जीव तथा ईश के संकल्प
() जीव ईश्वर बने
(२५) प्रीतिरूपा भक्ति
() कारणकार्यप्रवाह
() कारणोपाधि ईश्वर
() कर्योपाधि जीव
() चित्त के अर्थ

(३०) बुद्धि, मन
() सुषुप्ती
() बुद्धिवृत्ति
() स्पंदरूप अन्तवाहक तथा
दृढ आधिभौतिक
() जागृत अवस्था
() स्वप्न अवस्था
() स्थिर स्वप्नावस्था जागृति
() जगत् स्वप्नावस्था
() जागृति = भक्ति
() अन्तवाहकरूप उपाधि
(४०) जन्म का अर्थ
() मरण का अर्थ
() अन्तःकरण
() देहादि
() मूर्च्छा
() अविचारी बुद्धि
() विचारी बुद्धि
() महाज्ञानरूपता
() कर्म
() वासना
(५०) वासना की कर्मरूपता
() विद्यारूपता
() जीव का ईश्वर बनना
() शुभ अशुभ वासना
() सुखदुःख
() सुख
() स्वर्ग
() मर्त्यलोक
() नरकभोग
() वृक्षपाषाणादि अवस्था
() विचार का स्फुरण
(६१) देव-मनुष्य भेद
() देव-मनुष्य समानता
(६३) विद्या का अधिकार
() वैराग्य के बाद मुमुक्षा
() देवों की मुमुक्षा
() मोक्ष
() मुमुक्षा
() अखंडानंद
(६८) विषयानंद
(६९) राग
(७१) सुषुप्ति का आनंद
() समाधि का परमानंद
() परमानंद की प्रीति भक्ति
() रस
() एकाग्रता से रस
() रस की सामुग्री
() विभावानुभावादि से एकाग्रता
() आनंद का कारण
() अर्ध एकाग्रता से दुःख
() पदार्थ से सुख का कारण
(८१) दुःख का दूसरा कारण
द्वेष
() काम
() क्रोध
() लोभ
() नरक के द्वार

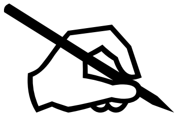

* यह ग्रंथ श्रीमहाराजजीने खास व्रजभाषा में स्वयं लिखा है। इसपर वैदर्भीय भाषा का प्रभाव होना अति स्वाभाविक है । यह ध्यान में रखकर इसका अध्ययन तथा आस्वाद लेना उचित रहेगा ।

तथा -

* तृतीय संस्करण में, प्रतिपाद्य विषय समझनेको सुलभ होने के लिए -

* नये परिच्छेद किये है ।

* नये उपशीर्षक डाले है ।

* और प्रश्नोंको तथा विषयोंको क्रमांक दिये है ।

* इसमें हमसे कुछ तृटियाँ रहना स्वाभाविक है । सुविद्य अभ्यासक उन्हे खोजकर बताने की कृपा करें । उस के अनुसार भविष्यत् संस्करण में वे तृटियांए दूर की जा सकेगी ।

- प्रकाशक.

प्रस्तावना

(पहली आवृत्ति की)

बरारप्रान्तान्तर्गत उमरावती जिले में माधान नामका एक ग्राम है । इस ग्रंथ के कर्ता श्रीगुलाबराय महाराज इसी ग्रामके निवासी है । महाराज का जन्म इसी ग्राम के अधिपति के कुल में हुआ है । इनका जीवनचरित अलौकिक होकर अत्यन्त आश्चर्यकारक है । वह विस्तारपूर्वक ग्रंथरूपसे प्रसिद्ध होनेवाला है । अतएव उसका यहाँ कोई उल्लेख करना अनावश्यकही है । तौभी यहाँ इतना कहना अनुचित न होगा कि महाराज जन्मांध है । वे शूद्र हैं । उनकी आयु ३०-३२ वर्षसे अधिक नही । सब वेदान्तविद्या इन्हे जन्मतः प्राप्त है । वे श्रीज्ञानेश्वर महाराजको अपनी जननी और श्रीकृष्णपरमात्मा को अपना पति मानकर, अपना सब समय योग, ज्ञान, भक्ति, और वैराग्य की चर्चा करने तथा इन विषयोंपर ग्रंथ लिखनेमेंही व्यतीत किया करते हैं । इस हिंदी ग्रंथके अतिरिक्त मराठी में महाराज के पाच ग्रंथ प्रसिद्ध हो चुके हैं । वे सब स्वयंस्फूर्ति से हुए है । उनमे सें चार ग्रंथ छन्दोबद्ध होकर भिन्न भिन्न विषयोंसे परिप्लुत हैं । एक ग्रंथ मराठी में व्याख्यानरूपसे और हिंदी में संवादात्मक लिखा गया है ।

व्याख्यानरूपसे लिखा हुआ ग्रंथ अपने ढंगका एकही है । उसमें जो विचार ग्रथित हैं वे अत्यन्त प्रौढ, गंभीर और उदात्त होकर, आंग्लविद्याविशारदोंको विस्मित कर उन्हे नई दिशा बतलानेवाले हैं । जिन्हें परमेश्वर ने विचारशक्ति प्रदान की है उनसें हमारी साग्रह प्रार्थना है कि वे इस अद्वितीय ग्रंथ को एकबार बिना पढे न रहें । इस में नाना प्रकारकी युक्तियां उत्तम प्रमेय और विचारतरंग लबालब भरे हैं । इसके पढने से यह बात भली भांति विदित हो जाता है कि अहंमन्य पाश्चिमात्य तत्त्ववेत्ते विद्वत्ताका गर्व रखते हुए भी वेन्दान्त विचार में कहाँ, क्यों और कैसी भूल करते है ।

दूसरा वर्तमान संवादात्मक हिंदी ग्रंथ । यह ग्रंथ जितना हिंदीभाषाभाषियों के कामका है उतनाही मराठी भाषाभाषियोंके कामका है । उस ग्रंथके प्रारंभमेंही श्रीगुलाबराय महाराजने ग्रंथके उद्देश्य तथा विषयका विवेचन किया है । भक्ति का प्रचार सर्वत्र कैसा होवे; श्रीकृष्णअवतार श्रेष्ठ

क्यों; अपन कौन, क्या; अपना जन्म काहेके लिए हुआ है; भक्ति और उपासना इनमें क्या भेद है; शिष्ठ-कुलीन किसे कहते है; ज्ञानप्राप्ति से क्या लाभ है; अज्ञान क्या और विक्षेप क्या, उनका विरास कैासा होता है; इत्यादि कई प्रश्नों का निर्णय, श्रुतिस्मृति के प्रमाण देकर तथा युक्ति से सिद्ध कर किया है । इनता लिखनेपर भी अंत में श्रीकृष्ण भक्तिही श्रेष्ठ क्यों, इस प्रश्नका बडी गंभीरता तथा गुरुता के साथ विवेचन किया है ।

श्रीरामचरित्र नीति से मर्यादित होने के कारण, उसका रहस्य कई लोगों को सहजमेंही मालूम हो जाता है । परंतु श्रीकृष्णचरित्र विषयासक्त बुद्धि की समझ के बाहर होने के कारण, उसे भक्तिमहिमा का ज्ञान होना शक्य नही है । इसीलिए पादरी लोक के पुस्तकों में अज्ञानवश लिखे हुए कुछ वाक्य पढकर विचारी पुरुष को करुणा, दया और हंसी बिना आये नही रहती । अज्ञानी बिचारे ! क्या करेंगे ।

सब विद्वान लोक श्रीशंकराचार्य को ज्ञान और वैराग्य का पूतलाही समझते हैं । वे कहते है कि उनके सद्दश निर्दोष तर्कना कहींभी देखने में नही आती । परंतु इस में विचित्रता इतनी ही है कि श्रीशंकराचार्य जिसकी कृपा तथा प्रभाव से ग्रंथ लिखते है और जिसके चरित्रकी पवित्रता की भिन्न भिन्न स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते है उस श्रीकृष्ण भगवान् तथा उनके चरित्रको लोग निन्दा करते हैं । या तों श्रीशंकराचार्य विचारशून्य होना चाहिये, या, अपना कोई स्वार्थ साधने के लिए ही उन्होने श्रीकृष्ण स्तुति का गान किया हो ।

अस्तु; इसका सारांश इतनाही है कि जिन्हें वेदान्ताविचार भली भांति ज्ञात है, जिनपर गुरुकृपा पूर्ण हुई है, और जो स्वार्थ या वैषयिक बुद्धि का त्याग कर विचार करने लगे है उन्हें श्रीकृष्णचरित्रमहिमा का ज्ञान होने के लिए एक क्षण भी न लगेगा ।

हम यह बलात् कहते हैं कि जिसे श्रीकृष्णचरित्ररहस्य मालूम हुआ है उसे पूर्ण वेदान्ततत्त्व ज्ञात हो चुका है और जिसे वेदान्ततत्त्व भली भांति मालूम हुआ है उसेही श्रीकृष्णचरित्ररहस्य विदित हुआ है ।

यह **'स्वमन्तव्यांशसिद्धान्ततुषार'** ग्रंथ बडे महत्त्व का है । वह श्रीकृष्णभक्ति के मंडनार्थही लिखा गया है । यह ग्रंथ पढकर पाठकों के मन

में थोडा भी ज्ञानरूपी प्रकाश पडे तो श्रीकृष्ण भगवान् उन्हें आगे का मार्ग बिना दिखाये न रहेंगे ।

शके १८३४ इ.सन १९१२ — ***पंडित श्रीनिवासशास्त्री रामचंद्र हरदास***

प्रकशक

॥ श्रीज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ॥

मधुराद्वैताचार्य श्रीगुलाबरावमहाराजविरचित सूक्तिरत्नावली ६ वी यष्टी

(मूल हिंदी भाषा में)

स्वमन्तव्यांश-सिद्धान्त-तुषार

मंगलाचरण.

यह ग्रंथ पठन करने के आदौ मेरे प्राणप्रिय श्रीकृष्ण तिनके वैभव को चरणदासादि साधुओं के बचनतें जिज्ञासुओं ने जथार्थ जानना अवश्य है. एते ते बचन यौं है.

शुकशिष्य स्वामी चरणदासकृत व्रजचरित्रवर्णन.

दोहा

चारी वेद तुमकू रटैं शिव शारदा गणेश ।
और न शीस नवायहूं श्रीकृष्ण करो उपदेश ॥१॥
कै गुरु, कै गोविंद, कै भक्ति, कै हरिदास ।
सबहुन के एकहि गिनू यथा पुष्प अरु बास ॥२॥
नारदमुनि अरु व्यासजी करिये कृपा दयाल ।
अक्षर भूलौं जो कहीं कहौं मोहि तत्काल ॥३॥
श्रीशुकदेव दयाल गुरू मम मस्तकपर ईश ।
व्रजचरित्र मैं कहत हूं तुमहि नवाये शीस ॥४॥
सब साधुन परणाम करी कर जोरू शिर नाय ।
चरणदास बिनती करैं बाणी देहु बनाय ॥५॥
(यष्टी-६-पृष्ठ-१)

व्रजका मुख्यत्ववर्णन

दोहा

सदा शंभु व्रजमैं रहै करी गोपींको रूप ।
मुरती तो परगट भई आप रहत हैं गूप ॥६॥
बंशिवट ढिग रहत है करत रहत है ध्यान ।
वक्ता वेदपुराण कें परम पुरातन ज्ञान ॥७॥
ब्रह्मादिक कलपत रहैं बृंदावन के हेत ।
सुधि आये ब्रजभूमि की बिसरि जाय सब बेत ॥८॥

व्रजवर्णन

चौपाइ

अब व्रज की गति गाय सुनाऊ । बुद्धि शुद्धि हरि भक्ति जुं पाऊं ।
चिंता मेट न भूमि बखानी । रण जितमित जहँ दुर्ग बिनानी ॥९॥

व्रजमंडल का प्रलय में भी नाश नही होवेगा. क्यौं की, वो श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र पर धरा है, ऐसा चरणदास ने दृष्ट है. अरु,

'मम साधर्म्यमागतः' / 'प्रलये न व्यथन्ति ते' ॥

इस वचनतें भक्तसमुदाय-व्रज का नाश नही होता, यह सिद्ध है.

चौपाइ

कमलापति को चक्र सुदर्शन । चरणदास ताको करै वंदन ।
मथुरामंडल तापर रहै । व्यासदेव मुनि ऐसा कहै ॥१०॥

व्रजमंडल सुदर्शनपर धऱ्या है, यह व्यासजीने बाराह संहिता में कह्या, ऐसा निरूपण.

चौपाइ

श्रीवाराह संहिता गायो । सों मैं भाषाबीच बनायो ।
गोवर्धनमहिमा अतिभारी । चरणदास ताके बलिहारी ॥११॥
जाकी महिमा सबहि न गाई । जहां कृष्ण नित गौ चराई ।
खरिक बनाय धेनु जंह राखी । अजहू चिन्ह देत है साखी ॥१२॥

दोहा

गोवर्धन बिनती करु मो बिनती सुन लेहू ।
जगत्भास सो काढिकरी भक्तिदान मोहि देहू ॥१३॥ (य६-२)

चौपाइ

हाटकरूप अडोल खरारी । जाके शरण रही व्रज सारी ।
ता दिन इंद्र सकोप पठायो । सकल मेघ झुकि व्रजपर आयो ॥
करपल्लवपर गिरि हरि धारो । तबही शरण रहो व्रज सारो ॥१४॥

यह संपूर्ण लीला नित्य है, परंतु अतींद्रिय दृष्टिबिना नहीं दिखती है, सो सब जथार्थ वर्णन.

चौपाइ

दिव्यदृष्टिबिन दृष्टि न आवैं । कंचनरूप पुराण बतावै ।
मथुरा मंडल में गिरि सोई । मथुरा मंडल अब सुनि लेई ॥१५॥
चौरासी क्रोश परमाना । मथुरा मंडल व्यास बखाना ।
हरिके चरण सदा जो परसै । कृष्णरूप में निशिदिन सरसै ॥१६॥

व्रजस्थ भगवल्लीलावर्णन.

चौपाइ

सखा संग लीन्हे हरि डोले । सखियनके संग करत कलोले ॥१७॥

समीपही वियोगवर्णन.

दोहा

सदा कृष्ण ब्रज में रहै मोहि मिलत है नाही ।
लहन मिहर कबहु करैं आनि गहें मम बाही ॥१८॥

व्रजस्थ वनोपवनवर्णन.

चौपाइ

जामे बारह बन बडभागी । बारह उपवन है अनुरागी ।
जिनमाही हरि बेणु बजावैं । मधुर मधुर बांके सुर गावै ॥१९॥

सो सगुणही भगवान् परवैराग्यादि गुण से अरु माया साक्षी, तातें तुर्याविशिष्ठ ईशिता कहा जावे है.

''विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सो ऽन्यः'' (श्वेताश्वतर अध्याय ५)
''एष ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः'' (बृहदारण्यक ब्राह्मण ६)

इत्यादि श्रुतियोंसे भगवान का स्थल और तिसको देखने का उपाय.

चौपाइ

चौथे पदको है वह स्वामी । सब जीवन को अन्तरयामी ॥
भक्तनहेतु रहै व्रजमाहीं । गुप्त रहैं वृंदावनठाहीं ॥२०॥
फिरत रहै सबही बन सुंदर । अन्तर बनो रासको मन्दर ॥ (य६-३)

यह ज्ञान की रीतीसे सिद्ध भया. अरु अन्वयरूप ध्यान की रीती भी इसी पद्य में कथन कीन्ही है. इसके उपरांत जो पद्य है, तिसमें -

१. भगवान्, २. तिनका प्रिय स्थल, ३. सो सब देखने का उपाय, अरु ४. देखनेवाले का लक्षण, एतत् चतुष्क निरूपित है.

चौपाइ

जगतदृष्टिसो रहे अलोपा । मिलि है ताहि ध्यान जिन रोपा ॥२१॥

व्रजमंडलका दृश्यत्व निराकरण करके - अदृश्यत्व, साकारत्व, नित्यत्व. यह अतींद्रिय दृष्टि से निश्चय करकें देख पडता है ऐसा वर्णन.

चौपाइ

मथुरामंडल परगट नाहीं । परगट है सौ मथुरा नाहीं ।
मथुरा मंडल यही कहावै । दिव्य दृष्टिबिन दृष्टि न आवै ॥२२॥

सा दिव्यदृष्टि भक्ति से प्रकाशित होती है.

दोहा

बन उपबन अब कहत हूं मथुरामंडलमाहीं ।
बिनाभक्ति व्रजनाथकी कबहूं दीखत नाही ॥२३॥

ये व्रजवर्णन श्रीव्यासविरचित बाराहसंहिता का भाषांतर होनेसे आप्तवचनपक्षियों को प्रमाण है, और अनुभवसे प्रमाण है, यह हमारा पूर्ण निश्चय है. व्रज जनों के विरहभक्तिवर्णन में सुंदरदास के यह वचन है.

कबित्त

पीयको अंदेशो भारी, तोसूं कहूं सुन प्यारी ।
यारी तोरी गये सो तौ, अजहुँन आये है ॥
मेरे तो जीवनप्राण, निशिदिन ऊहै ध्यान ।
मुखसूं न कहूं आन, नैनउर लाये है ॥

जबते गये बिछोहि, कलन परत मोहि ।
तातें हूं पूछत तोहि, किन विरमाए है ॥
सुंदर विरहनी को, शोच सखि बार बार ।
हमकू बिसार अब, कौनके कहाये है ॥२४॥ (य६-४)

अपने विरहतें आरोपित कियी हुई भगवद्दशावर्णन.

कबित्त

हमकू तो रैनदिन, शंक मनमाहीं रहै ।
उनकी तौ बातनिमें, ढंगहुन पाइये ॥
कबहूं संदेशा सुनि, अधिक उछाह होइ ।
कबहुंक रोइ रोइ, आंसुन बहाइये ॥२५॥
औरन के रसवश होइ, रहे प्यारे लाला ।
आवनकी कही कही, हमकू सुनाइये ॥
सुंदर कहत ताहि, काटियेसु कौन भांति ।
जोइ तरू आपनेसु हात थे लगाइये ॥२६॥
मोसूं कहे औरसीही, बासूं कहे औरसीही ।
जाकूं कहै ताहिके, प्रतीत कैसे होत है ॥
काहूंसूं समास करे, काहूसूं उदास फिरै ।
काहूंसू तौ रसवश, एकमेक पोत है ॥२७॥
दगाबाजी दुबधा तौ, मनकी न दूर होई ।
काहूंके अँधेरो घर, काहूंके उद्योत है ।
सुंदर कहत जाके, पीरसो करै पुकार ।
जाके दुःख दूर गये, ताको भई वोत है ॥२८॥

विरह में ऊपर दुःखाभास और अन्तर परमानंदप्राप्ति,
तैं विस्मय-दशावर्णन.

कबित्त

हिये और जिये और, लिये और दिये और ।
किये और कौनसूं, अनूपपाटी पढे है ।
मुख और बैन और, नैन और तन और ।
मन और काया सब, यंत्रमाहि कढे है ॥२९॥
हाथ और पाँव और, शीश हूं श्रवण और ।
नख शिख रोम रोम, कलईसूं मढे है ।
ऐसी तो तौ कठोरतान, सुनी नहि देखी जग ।
सुंदर कहत कोइ, व्रजहीके गढे है ॥३०॥
(य६-५)

अब संयोगवियोग-भक्ति में अस्मद्गगिनी के वचन

संयोगदशा वर्णन

पद

जबसे मोहि नंदनंदन दृष्टि परो भाई ।
कहां कहूं अनूपम बाकी छबि बरणी नहिं जाई ॥१॥
मोरन की चन्द्रकला शीस मुकुट सो है ।
केशर को तिलक भाल, तीन लोक मो है ॥२॥
कुंडल की झलकन कपोलपर छाई ।
मानो मीन सखर तजि मकर मिलन आई ॥३॥
ललित भृकुटि तिलक भाल चितबन में टौना ।
खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग छोना ॥४॥
सुंदर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा ।
नटवर प्रभु वेश धरे रूप अति विशेषा ॥५॥
हँसन दशन दाडिमद्युति मंद मंद हांसी ।
दमकि दमकि दामिनि द्युति चमकी चपलासी ॥६॥
क्षुद्र घंटिका अनूप बरणि नही जाई ।
गिरिधर प्रभु चरणकमल मीरा बलि जाई ॥७॥

वियोग-दशावर्णन.

पद

कहीं देखोरी घनश्यामा ॥ टेक ॥
मोरमुकुट पीताम्बर सो है, कुंडल झलके काना ।

सांवरी सुरत पर तिलक बिराजै, तिसमैं लगै मोरे प्राना ॥१॥
बरसाने सों चली गुजरिया, नंदग्राम को जाना ।
आगे केशव धेनु चरावै, लगै प्रेम के बाना ॥कही०॥२॥
सागर सुखि कमल मुरझाना, हसां कियो पयाना ।
भौंरा रहिगये प्रीति के धोके, फेर मिलन को जाना ॥३॥
वृन्दाबन की कुंजगलिन में नूपुर रूनझुन लाना ।
मीराबाई को दर्शन दीज्यो, व्रज तजि अनत न जाना ॥४॥
कहीं देखोरी घनश्यामा ॥ टेक ॥ (य६-६)

॥ श्रीज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ॥

स्वमन्तव्यांश-सिद्धान्त-तुषार

दोहा

बंदौ चरनन जोरिकर श्रीपति गौरि गनेस ।
पंचायतन पूंजने नमो महेश दिनेश ॥१॥
ज्ञानेश्वर करुणाघन कारण जगदोद्धार ।
तिनकी कृपा नंदसुतकंठ डारूंगी हार ॥२॥

चौपाइ

बंदौ ज्ञानेश्वर गुरुनाथा । राखो करुणाकर मम माथा ।
दुर्जनकृत निजकांताऽऽरोपा । हरन करी वारो मम तापा ॥३॥

सखिवचन

प्रश्न १ :- तुम कौन हो ?

उत्तर :- मै ज्ञानेश्वरकन्या और कृष्णपत्नी हूं.

प्रश्न २ :- तुम्हारा जगत् में आनेका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर :- भक्तिस्थापन का यथाशक्ति प्रयत्न करना.

युवा भक्ति और जरठ पुत्रों की कथा

प्रश्न ३ :- भक्ति स्थापन करनेकी किनकी आज्ञा है ?

उत्तर :- श्रीभगवान् नारदाचार्य मुनी की.

एक समय वे महाराज जगदटन करते व्रजभूमी समीप प्राप्त

भये. तहां एक तरुण स्त्री और दो बुढ्ढे पुरुष देखे. तिस स्त्री के दास्य करने और भी बहुत सुंदर स्त्रिया थी.

तिस बालाको भगवान् ने पूछा की - ''तूं कौन है?''

तदा सा बोली, - ''मै भक्ति हूं. और ये दो जरठ पुरुष, ज्ञान और वैराग्य नामके मेरे लरके है. और ये स्त्रियां मेरे दास्य के कारण प्राप्त भयी गंगा आदि सरितायें है.''

तदा भगवान बोले की, ''तेरे बालकों को चेतन करने के लिये मै उपाय चिंतन करतां हूं. तूं यहां ही बैठ. मैं तुजको सुखी करके कलजुग में भी गृहगृह, जनजन, वनवन, आदि स्थानों में स्थापन करूंगा. तबही मोको बैष्णव कहना.''

इतना कह भगवान् नारदमुनि भगवान् **(य६-७)** सनत्कुमार को जा मिले. और तिनके हातसे ज्ञानयज्ञ भागवतसप्ताह किया. तहां सुरवरमुनि श्रवण करने को आवते भये. तब अपने तरुण लरकें कों लेकर भक्ति भी तहां प्राप्त भयी. और भगवान् श्रीकृष्ण भी आन पहुंचे. सप्ताहानंतर जब कीर्तन भया, तब भगवान् संतुष्ट व्हयके भक्ती को वरप्रदान किया की - ''मेरे जो त्रैकालिक जन है, तिनका तूं पोषण कर.''

तदा सा भक्ति सब संतोंके हृदयमें प्रवेश करती भयी.

एषा कथा पद्मपुराण में प्रसिद्ध है. जातें यह सिद्ध भया कीं, भगवद्भक्तों के मुखसे ही भक्ति जगत में प्रविष्ट होती है. तैसी भागवतसे भी होती है. क्योंकी उस समय भक्ति ने भागवत में भी प्रवेश किया था. अरु उद्धव की प्रार्थनासे हमारे कांत भागवतेंही रहे. इसलिये संत और भागवत के द्वारा प्रभु नारदजी भक्ति स्थापन करते है.

गौण और परमप्रेमरूपा भक्ति

प्रश्न ४ :- 'भक्ति' शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर :- '**सात्वस्मिन्परमप्रेमरूपा**'- ईश्वरके विषय परम प्रेमरूप होना.

प्रश्न ५ :- 'परम' शब्दकी अपेक्षा कोई गौण प्रेम भी अपेक्षित

है?

उत्तर :- हां. जो परमेश्वरविषयक कुछ संबंध को उत्पन्न करता है, ओ परमकी अपेक्षा गौण प्रेम है. '**तस्यैवाहं / ममैवासौ**' इत्यादि संबंध **मधुसूदनकृत 'भक्तिरसायनमें**' प्रसिद्ध है.

प्रश्न ६ :- अब परम प्रेम क्या है, सो कहो.

उत्तर :- जैसे की माहात्म्यज्ञान के अनंतर गोपिकाओं को उत्पन्न भया था. '**यथा व्रजगोपिकानाम्**' (नारदसूत्र.) इस सूत्र का जिसकू प्रमाण है, सो परम प्रेम है. '**स एवाहं**' इत्यादि 'भक्तिरसायन'वाक्यतें ताकी सिद्धि होवे है. '**स एवाहं**' यह वाक्य परम प्रेम की नित्यता के अपेक्षा कहा है. केवल अहंपूर्वक ब्रह्मनिष्ठता के अर्थ नही.

प्रश्न ७ :- तिस प्रेमका विषय कौन है ?

उत्तर :- श्रीकृष्ण. नारदजीने व्यासकू अपनी पूर्वजन्मपूर्वक कथा कही. **(य६-८)** और तिसको भागवत करनेकी आज्ञा दीनी. उस में प्रेमका विषय श्रीकृष्ण है, ऐसा सिद्ध किया है. शुकाचार्य को भी व्यास ने श्रीकृष्णभक्ति का उपदेश किया. वे ब्रह्मनिष्ठ होके भी अहेतुक सगुणभक्ति करते है.

अरु '**यथा व्रजगोपिकानाम्**' इत्यादि सूत्रों में नारदजी ने श्रीकृष्णभक्तों के उदाहरण लिये है. इत्यादि अनेक हेतूतें भगवान् नारदाचार्यजी को श्रीकृष्णभक्तिही अपेक्षित है. अरु नारदजी ने अंतिम सूत्र लिखा है. तिस में शिव आदि सब संतोंको भक्ति स्थापन करनेकी इष्टता कही है.

कृष्णावतार में गोपी बनो

प्रश्न ८:- क्या, इसकू कोइ श्रुति प्रमाण है ?

उत्तर :- हां. **श्रीकृष्णोपनिषत्, गोपालपूर्वतापनीय, उत्तरतापनीय** प्रसिद्धही है.

प्रश्न ९ :- उपनिषत् तो रामतापनीय, नृसिंहतापनीयादिक भी है. तो श्रीकृष्णभक्ति क्योंकर वरिष्ठ भयी ? और उसको ही क्यौं

स्थापन करते हौ?

उत्तर :- 'कृष्णोपनिषद्' में, सब मुनियोंने रामतें आलिंगनस्पृहा कीनी थी; तब वे बोले की, ''तुम सब कृष्णावतारमें गोपिका बनकर मेरा आलिंगन करना'', ऐसी कथा है.

जातें, श्रीकृष्णावतार में ही हृदयालिंगन की शक्ति प्रतीत होती है; अन्य में नही.

यद्यपि अगस्तिसंहिता में रामके विषय पतिभक्ति करना लिखा है, तथापि सा पुष्टिविषयिणी नही किंतु मर्यादाविषयिणी है. औ कृष्णोपनिषद् अन्तर्गत मुनीच्छा तौ पुष्टिविषयिणी है. जातें श्रीकृष्णभक्तिश्रैष्ठ्य सिद्ध भया.

इसलिये मुनिमहाराज श्रीकृष्णभक्ति स्थापन करते है. और '**कृष्णाय देवकीपुत्राय**' इत्यादि **'सामवेदिया'** भी श्रुति है.

उपासना और भक्ति

प्रश्न १० :- तो राम, नरसिंहादिक अवतारोंका कुछ उपयोग नहीं ?

उत्तर :- उपासना करनेके लिये तिनका उपयोग है.

प्रश्न ११ :- उपासना क्या है ? **(य६-९)**

उत्तर :- सत्त्ववृद्धि और विक्षेपनिवृत्ति के लिये जे ईश्वरविषयक अंतर्बाह्य कर्म तिनका नाम उपासना है.

प्रश्न १२:- तो भक्ति का लक्षण क्या प्रेमही है? और ओ श्रीकृष्ण-विषयकही होना चाहिये और नारदजीकी वैसीही आज्ञा है?

उत्तर :- हां. तुमने कहा यह ही ठीक है. **मैं भी भगवान् नारदाचार्यरूप भगवान् ज्ञानेश्वरतातमुखद्वारा मिलि हुयी आज्ञाको, अरु 'नारदीयसूत्र' द्वारा मिलि हुयी आज्ञा को पालनकरी श्रीकृष्ण भक्ति स्थापन करनेका यत्न करती हूं.**

पूर्ण सगुण परमेश्वर

प्रश्न १३ :- तुह्मारे श्रीकृष्ण कौन है ?

उत्तर :- हमारे प्राणप्रिय कांत है. और अहंकृति छोरके मेरे

परम प्रिय है.

प्रश्न १४ :- उनको क्या तुम मनुष्य मानते हो ?

उत्तर :- नही. वे पूर्ण सगुण परमेश्वर है.

प्रश्न १५ :- पूर्णत्व कैसा होता है ?

उत्तर :- ईश्वरत्व और शिष्टत्व मिलके.

षड्गुणैश्वर्य

प्रश्न १६ :- ईश्वरत्वका क्या लक्षण है ?

उत्तर :- जिसके आश्रित षड्भग होवे है, सो ईश्वर है.

प्रश्न १७ :- षड्भग कौनसे है ?

उत्तर :- श्री, यश, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य.

प्रश्न १८ :- अब एक एकका पृथक् पृथक् लक्षण कहो.

उत्तर :-

१) मनोहर शोभाका नाम **श्री** है.

२) **यश** वह है, जो थोडे कर्ममें अत्यंत कीर्ति और श्रेय मिलना.

३) इच्छानुसार देनेका नाम **औदार्य** [1] है.

४) **ज्ञान** दो प्रकारका. व्यवस्थाकारी और बंधनिवर्तक. (१) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, लय के व्यवस्था को जानना **व्यवस्थाकारी ज्ञान** है. और (२) अज्ञान की निवृत्ति जिससे होती है, तत् **बंधनिवर्तक ज्ञान** है.(य६-१०)

५) किसी कर्म में वा फल में आसक्ति नही रखना **वैराग्य** है.

६) अप्रतिबद्धा ऽखंडानंद और कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुं शक्ति का नाम **ऐश्वर्य** है.

- यहही षड्भग है. इनका अधिष्ठान परमात्मा है.

(१.यह दातृत्व औदार्य है; और चतुर्विध औदार्यका निरूपण आगे किया जावेगा.)

अल्प ऐश्वर्य से जीव का तोटा

प्रश्न १९ :- तो ये गुण जीवमें नहीं पाये जाते है ?

उत्तर :- नही.

प्रश्न २० :- तो जीव परमेश्वरका अंश क्यौंकर कहा ?

उत्तर :- ये षड् भग जीवमें अल्प तो पाये जाते है, वरन् जीवको तिनसे कुछ नफा नही है. उलटा तोटाही है.

प्रश्न २१ :- क्या तोटा है ?

उत्तर :- इनसे जीवकी वासना अरु दुःख अधिक बढ्या है. जैसे की, उष्ण पदार्थ के ऊपर अल्प जल डालनेसे गरमी अधिक भासती है, वा **ज्वर में अल्पशक्तिवाला औषध देनेसे ज्वरका अधिक प्रकोप होता है,** तैसेही वे षड्भग अल्पताकी कारण 'जीव के वासना को बढावते है.'

प्रश्न २२:- किस भग की अल्पता से जीव की कैसी वासना बढती है?

उत्तर :-

१- **श्री** की अल्पता होने से **सौंदर्यवासना** बढती है. क्यौंकी, पूर्ण श्रीकी तृप्ति नही. इसतें गृहसौंदर्य, पुत्रसौंदर्य, स्त्रीसौंदर्य, पदार्थसौंदर्य, ऐसी वासना बढती है.

२- **यश** की अल्पतासे **साहस करनेकी वासना** बढती है.

३- **औदार्य** की अल्पतासे **फलयाचन वासना** बढती हे.

४- **ज्ञान** के अल्पतासे **संसारकी सत्यता और नास्तिकता** बढती है.

५- **वैराग्य** के अल्पतासे **विषयासक्ति** बढती है.

६- और **ऐश्वर्य** की अल्पतासे **इच्छापघात और दुःख** बढता हैं.

'अल्पता' शब्द यहां तिरोधानवाची है. ऐसे तिरोहित गुणका अधिष्ठान जीव है.

जीव की पूर्णता कैसे ?

प्रश्न २३ :- तो यह जीव पूर्ण कब होवेंगा ?

उत्तर :- जैसा लवण समुद्र में मिल जाता है, तैसा अपने पूर्ण में मिल जायगा तब. **(य६-११)**

प्रश्न २४ :- तो जीव ने पूर्ण में कैसा मिलना ?

उत्तर :- ईश्वर की भक्ती से.

प्रश्न २५ :- क्यौं, ज्ञान से नही मिलेंगा?

उत्तर :- हां, बंधनिवृत्ति तो ज्ञान से होवेंगी, वरन् संपूर्ण गुण नहीं आवेंगे.

प्रश्न २६ :- भक्ति से क्यौंकर आते है ?

उत्तर :- उन गुणोंकी पूर्णता करनेके भक्ति में ही गुण है.

प्रश्न २७ :- भक्ति में वे गुण कौनसे है ?

उत्तर :- ध्यान, कीर्तन, समर्पण, महात्म्यज्ञान, विषयोपेक्षा और परमप्रीति.

प्रश्न २८ :- किस गुणसे किसकी पूर्णता होती है ?

उत्तर :-

१- एष जीव जब परमेश्वरका **ध्यान** करता है, तदा अस्य **श्री** की

पूर्णता होती है.

२- **कीर्तन** करता है, तदा **यश** की पूर्णता होती है.

३- अपने सब **कर्म समर्पण** करता है, तदा **औदार्य** की पूर्णता होती है.

४- **महात्म्यज्ञान**-निष्ठ होता है, तदा **सर्वज्ञता** की पूर्णता होती है.

ऊपर कह्या दोनों प्रकारका ज्ञान सर्वज्ञता है.

५- **विषयोपेक्षा** से **वैराग्य** की पूर्णता होती है.

६- **परमप्रेमतें ऐश्वर्य** की पूर्णता होती है.

श्रवणादिक नवविध भक्ति इन गुणोंसे युक्त होती है. तां अग्रे कहेंगे.

प्रश्न २९ :- ऐसा पूर्ण जीव ईश्वरसे भिन्न रहता है, वा अभिन्न रहता है?

उत्तर :- सो ईश्वर से अभिन्न होता है. इतनाही क्या कहना है? वह साक्षात् ईश्वर ही होता है.

प्रश्न ३० :- तो एक एक जीव ईश्वर होनेसे ऐसे बहोत ईश्वर होवेंगे ?

उत्तर :- नही. लवणकण समुद्र में डालनेसे समुद्र कुछ बढता घटता नही प्रतीत होता है. तैसे, एकही ईश्वर में जीव मिलके ईश्वरता को प्राप्त होता है.

अनादि अविद्या : आवरण और विक्षेप

प्रश्न ३१ :- जीव भिन्न क्यौं है? **(य६-१२)**

उत्तर :- अनादि अविद्यासे.

प्रश्न ३२ :- अनादि अविद्या का क्या स्वरूप है?

उत्तर :- आवरण और विक्षेप.

प्रश्न ३३ :- इसकी निवृत्ति कैसी होती है?

उत्तर :- माहात्म्यज्ञानतें आवरण की निवृत्ति होती है. और ध्यानादि गुणोंतें विक्षेपकी निवृत्ति होती है.

प्रश्न ३४ :- तो पूर्व कह्या जो उपासनासे निवृत्त होनेवाला विक्षेप यही है, वा कोइ दुसरा है ?

उत्तर :- हे सखि ! तेरे प्रश्नका अर्थ मैने जाण्या. सो यह है की, जो पूर्व कहेला विक्षेप और अब कहेला विक्षेप एक होते तो भक्ति अरु उपासनाकीभी एक होवेंगी. परंतु ऐसा नहीं.

उपासनासे निवृत्त होनेवाले विक्षेपका अर्थ मनकी अनैकाग्रता है. ताकी निवृत्ति आवरणनिवृत्ति के पूर्व और मलनिवृत्ति के अनंतर होती है. सो **'वेदान्तडिण्डिम'** में कहा है.

श्लोक

कर्माणि चित्तशुद्ध्यर्थमैकाग्र्यार्थमुपासना ।
मोक्षार्थं ब्रह्मविज्ञानमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१॥

इस श्लोक में ज्ञान के पूर्व तथा आवरणनिवृत्ति के पूर्व, एकाग्रताके अर्थ उपासना कही है. आवरणनिवृत्ति तो ज्ञानसमकालिन होवे है. जातें, ज्ञानके अनंतर उपासनाकी अवश्यकता नही. अर्थात्

उपासनासे जो विक्षेपनिवृत्ति होती है, सो मनकी चंचलताका नाम है.

प्रश्न ३५ :- तो भक्तीसे निवृत्त होनेवाला विक्षेप कौनसा है ? और ताका निरूपण क्व करेला है ?

उत्तर :- आवरणनिवृत्ति के अनंतर जो विक्षेप रहे है, सो भक्तीसे निवृत्त होनेवाला है. तिसका निरूपण **'पंचदशी'** में कीना है. तत् इस भांति है. रज्जुसर्पनिवृत्ति के अनंतर यथा भयकंपादिक रहते है, तथा अज्ञानपूर्वक आवरणनिवृत्ति के अनंतरभी संसार-सुखदुःख-प्रतीति रहे है. एतन्नामही विक्षेप है. और जलस्थवृक्षप्रतिबिम्ब-दृष्टांततें **'वृत्तिप्रभाकर'** में भी कथन **(य६-१३)** कऱ्या है. अयं विक्षेप भक्तीतेंही निवृत्त होवे है. विस्तरसें देखनेकी अभिलाषा होवे, तो इन उभय विक्षेपका निरूपण **'वेदांतपदार्थोद्देशदीपिका'**[1] में कऱ्या है, तहां जाणिलेना.(१.महाराजका ग्रंथ)

प्रश्न ३६ :- यह आवरण अरु विक्षेप किसके आश्रित रहे है?

उत्तर :- जीवके.

जीव क्या है ?

प्रश्न ३७ :- तो जीव क्या है ?

उत्तर :- अविद्या में प्रतिबिम्बित आभास.

प्रश्न ३८:- तो ये षड्भग जीव के अविद्यासेही तिरोहित हुये है?

उत्तर :- हां.

प्रश्न ३९ :- पूर्व कही हुई भक्तीसे एष जरूर ईश्वर होता है ?

उत्तर:- होता है, ये क्या पूछते हो? **वह जीवत्काल में ईश्वरही है.**

प्रश्न ४० :- इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर :- **'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति ।'**
'ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः ।'
'मयि ते तेषु चाप्यहम् ।'

इत्यादि श्रुति प्रमाण है.

भक्तिसेही व्यापक में प्रवेश

प्रश्न ४१ :- तो उसको देशकालकी अपेक्षा कुछ नहीं ?

उत्तर :- नहीं. यहां श्रीमत्सद्गुरुज्ञानेश्वरताततमुखनिर्गत अनुभवामृतांतर्गत श्रुति प्रमाण है. सा श्रुति यह है :-

दोहा

'भक्त भया भगवंतही हुवा ग्रामही पंथ ।
प्रियहरिलीलागान में विश्वहि भया इकंत ।।'

प्रश्न ४२ :- तो भक्ति निर्गुणविषय करनेबिना जीव व्यापक ब्रह्म नहीं बन सकेंगा ?

उत्तर :- ऐसा नहीं. तातनें कहा है :-

दोहा

'सुधासिंधु में रहत है अमरदान का गून ।
तथाहि बिंदुग्रहणतें नहिं कछु पावत न्यून ॥
तथा एकदेशीय अरु व्यापक सबहि समान ।
यही जाननेकारन करो संतजनमान ।।'

एतत् गुरुवाक्य है. अणे, अपनी विशेष विचारतेंभी प्रतीत होवे है की, **सगुणभक्तिबिना व्यापक में प्रवेश नही.** यद्वत् **(य६-१४)** सिंधुसैंधवमिलाफ एकदेशमेंही होता है, तद्वत्, अल्पका व्यापक होना एकदेशीय सगुणभक्तीसेही होता है. और **'क्लेशोऽधिकतरस्तेषां'** इत्यादि श्लोकोंमें भी निर्गुणोपासकों की कष्टतरता कथन करी है.

निर्गुणोपासकों के कष्ट

प्रश्न ४३ :- सा कष्टतरता कथंभूता है ?

उत्तर :- व्यतिरेक करनेसे विषय का रोध करना पडता है. तातें विषय का द्वेष उपजता है. सो द्वेष क्लेश है. ताकी निवृत्ति केवल व्यतिरेकतें होती नही. अरु व्यतिरेकविना निर्गुणोपासना होती नही. अतो सा निर्गुणोपासना कष्टमयी है, ऐसा निरूपण कऱ्या.

निर्गुणोपासना में व्यतिरेक की अत्यंतावश्यकता श्रीमच्छंकराचार्यजीने **'पंचीकरण'**में बोली है.

अणे, **'मांडुक्यकारिका'** में तो व्यतिरेक का और निर्गुणोपासना का एकही लक्षण है.

प्रश्न ४४ :- तो 'मेरे अव्यक्तरूपको नहीं जानिके मूढ लोक मुझे व्यक्त मानते है' ऐसा गीताजीके सप्तम तथा नवम अध्याय में भगवानने क्यौंकर कहा है ?

उत्तर :- अच्छा पूछा. निर्गुणके विषे मन लगानेका जो निषेध कऱ्या है, सो * ध्यानके द्वारा मन लगानेका निषेध है. और * ज्ञान तो निर्गुणकाही अपेक्षित है.

जैसे सुवर्णको नही जानिके केवल भूषणाकारकोही मोहित होनेवाला पीतलके अलंकाराकारको मानिके भी फस जावेंगा, तैसे निर्गुण को नहीं जानिकै केवल आकारपर दृष्टि देनेवाला फसानेके लिये हुये सिद्धियों के आकारविशेषों को देखिकरी भूल जावेंगा.

जातें व्यक्तमूल अव्यक्त सुवर्णकी नाई मेरे इस आकारस्थान निर्गुणरूपको भी जानना आवश्यक है. इस अभिप्राय में सप्तम-नवम-अध्यायगत-भगवद्वचन का तात्पर्य है.

अरु श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के चौदाहवे अध्याय के चौथे श्लोक में ब्रह्मदेव ने कहा है की, ''हे भगवन् ! अनंतकल्याणसुधाप्रवाह है जिस तुम्हारे पुण्यरूप भक्तीका, अमुम् छोरिके जे कोई ज्ञानप्राप्तीके लिये कष्ट करते है, तिनको ते **(य६-१५)** कष्टही प्राप्त होते है. काहे तैं? जो कोई भूसा कूटता है, तं तत् कूटनाही फल मिलता है.''

प्रश्न ४५ :- निर्गुणोपासकों की योगादिकोंतें द्वेषक्लेशनिवृत्ति नही होती है?

उत्तर :- हां, नहीं होती है. इस विषे दशम स्कंध में भगवान् का मुचकुंद से बचन है, सो प्रमाण है.

युंजानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः।
अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ।। श्रीमद्भागवत.

''हे राजन् मुचकुंद ! जे प्राणायामादि अष्टांगयोग से, वा नाना विचार से मेरे निर्गुणरूप में मन लगाते है, और मम सगुणभक्ति नहीं जानते है, तिनका चित्त विषयद्वेषक्लेशादियुक्त होनेसे वासनाक्षय नहीं होता है; अतः पुनरुत्थान होता है. तदुत्थानको मैंही देखता हूं. ते मूढ विमुक्तमानी पुरुष अपने उत्थान को नहीं देखते है.'

भगवानने कहा है, जातें 'दृश्यते' इस शब्दके पूर्व **'मया'** पदका अध्याहार करनेतें ऐसा स्पष्ट अर्थ होता है.

प्रश्न ४६ :- तो सगुण-भक्त निर्गुण-भक्ती की कभी अपेक्षा करते है ?

उत्तर :- नहीं. ब्रह्मदेवने कहा है कि 'हे भगवन्! तुम्हारे भक्त ज्ञान मिलाने आदि कष्ट छोर संतों के मुख से आपकी कथा श्रवण करते है; आप तीन लोकों को अजित हो, तोभी तिनों ने आपको जीत लिया है.'

प्रश्न ४७ :- सगुण परमात्मा आत्माकोभी ज्ञान देनेको और पूर्ण करने को समर्थ है ?

उत्तर :- हां. अस्मिन् श्रुतिभी प्रमाण है.

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तँह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।।' (य६-१६)

(कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतर उपनिषत्)

श्रुत्यर्थ :- ''जो देव पूर्व ब्रह्मा को उत्पन्न करके तिसको वेदप्रदान करता भया, तिस रक्षण करनेवाले, और आत्मा तथा बुद्धि को प्रकाश देनेवाले परमेश्वर को मैं मुमुक्षु नमस्कार करता हूं.''

इस श्रुति में वेदप्रदान करनेवाला पुरुष साकारही होना चाहिये.

सगुणकी व्यापकता

सगुणसाकार / निर्गुणनिराकार

प्रश्न ४८ :- तो सगुण व्यापक हो सकता है ?

उत्तर :- हां.**'सहस्त्रशीर्षा'** इत्यादि श्रुति सगुण की व्यापकता में प्रमाण है.

प्रश्न ४९ :- तो **'केवलो निर्गुणश्च'** इस श्रुतीका अर्थ तुम क्या

करते हो?

उत्तर :- अविद्याके जो सत्त्वादिक गुण ते जामें नहीं, अतो निर्गुण; और बंध नहीं जाते 'केवल'! अयं ता श्रुतीका अर्थ है. नहीं तो पूर्व श्रुतीसे विरोध होवेगा.

प्रश्न ५० :- तो तुम **'निर्गुण'** का अर्थ **'निराकार'** नहीं करते हो?

उत्तर :- मैं नहीं करती हूं और करतीभी हूं.

प्रश्न ५१ :- तर्हि - **'द्वावेतौ ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चाऽमूर्तं च'** ब्रह्म के मूर्त अरु अमूर्त ये दो रूप है, इस वाक्य की तुम्हारे मत में कथंभूता व्यवस्था होवेगी ?

उत्तर :- मेरा कुछ पृथक् मत नहीं है. तिस वाक्य की व्यवस्था समीचीन है.

जैसी सूर्य की विरलावस्था प्रकाश निराकार है, और प्रकाश की घनावस्था सूर्य साकार प्रतीत होते है.

तैसीही परमात्मा की व्यापक विरलावस्था निराकार प्रतीत होती है. अरु घनावस्था साकार प्रतीत होती है.

इयं घनावस्थाही **'अनध्यस्तविवर्त'** है.

श्रुतीमें जो द्वित्त्व कहा है, सो बालबुद्धीको जणावनेके अर्थ कहा है.

प्रश्न ५२ :- तो परमात्मा सावयव होवेगा ?

उत्तर :- नहीं. पृथक्ताज्ञानविना अवयव की सिद्धता नहीं होती है. तैसे परमात्मा में पृथक्ज्ञान नहीं. अतो सावयवता नहीं सिद्ध **(य६-१७)** होती है. अरु कोईक कवीने बोल्या है :-

दोहा

निर्गुण अरु सगुण यह दोनो जाके अंग ।
नंदलाल सोही प्रभु खेलत हमरे संग ॥

प्रश्न ५३ :- तो सगुण देव में जे करचरण प्रतीत होते है ते पृथक् नहीं?

उत्तर :- नहीं. जैसे पंचभूतदृष्टीसे अस्मदादिशरीरोंके करचरण पृथक् नहीं, तैसे चैतन्यदृष्टीसे सगुण परमेश्वरके भी करचरण पृथक् नही. और,

'विश्वतोबाहु विश्वतोमुखं विश्वतश्चक्षु विश्वतः पादः'

एषा श्रुति तहां प्रमाण है.

प्रश्न ५४ :- तो **''अपाणिपादौ जवनो गृहीता''** इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध होवेगा?

उत्तर :- ये श्रुतियां भौतिक अरु लौकिक पाणिपादका निषेध करती है. जातें विरोध नहीं. और विरलावस्थारूप ब्रह्मपर होनेते भी विरोध नही. और-

'सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति' ॥ (मुंडकोपनिषत्)

एषा दुसरीभी श्रुति तहां प्रमाण है.

प्रश्न ५५ :- ऐसे जिधर उधर हातपाववाले को ईश्वर माने, तो किंचित् कृमिविशेषोंको भी ईश्वर मानना पडेगा ?

उत्तर :- कृमियोंको लौकिक पाणिपाद है. और ईश्वर में तिनका निषेध होनेते, कोटिप्रवेश होता नहीं.

प्रश्न ५६ :- तर्हि **'यस्य पृथ्वी शरीरं एष ते आत्मा ऽन्तर्याम्यमृतः'** इत्यादि श्रुतियोंकी क्या व्यवस्था है ?

उत्तर :- एता श्रुतियां पदार्थमात्रको परमेश्वरका शरीर कहतिया है; और व्यापकतातें **'अन्तर्यामी'** कहतिया है. और **'अमृत'** कहनेसे नित्यता सिद्ध होती है.

सगुण नित्य कैसा ?

प्रश्न ५७ :- सगुण नित्य कैसा होवेगा ?

उत्तर :- हां, नित्य है. **'सहस्त्रशीर्षा'** यह श्रुति तिस सगुण को व्यापक कहती है.

और **'आत्माऽमृतः'** एषा श्रुति नित्य कहती है.

जो जो व्याप्त होता है, सो सो नित्य होता है.

क्यौंकि (**य६-१८**) अपनेतें भिन्न कोइ देश में नाश प्रतीत होना चाहिये. अपना अपने में नाश होना असंभव है. अपने नाश का आपही अधिकरण कैसा होवेगा ?

और **'न व्यापित्वाद् देशतोऽन्तो'** एषा श्रुति व्यापक की देशपरिच्छेदका निषेध करती है. जातें, **'यद्यव्यापकं तन्नित्यं'** यह सिद्ध भया.

माया का स्वामी

प्रश्न ५८:- तो **मांडुक्योपनिषद** में अंतर्यामी को माया का स्वामी कह्या है?

उत्तर :- कह्या तो वहां कुछ प्रत्यवाय नहीं. क्यौंकि, स्वामी **'ईशिता'** का नाम है. और 'ईशिता' माया में कैसा रहेगा?

'विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः' एषा श्रुति भी तहां प्रमाण है.

भिन्नत्व जो कहा है, सो मृगजल और सूर्य की नाई प्रातिभासिक है. अन्योन्याभावरूप वा वस्तुपरिच्छेदरूप व्यावहारिक नही. और जीव प्रातिभासिक है. यातें सो वस्तुतः ईश्वरही है. किंतु अविद्याबलतें अपने को भिन्न मानता है.

प्रश्न ५९ :- बहोत पूर्वाचार्योंने तो जीव को व्यावहारिक कह्या है, और तुम प्रतिभासिक कहते हो? जातें, आचार्यवाणीरूप विरोध प्राप्त होवेगा?

तूला-अविद्या और मूला-अविद्या

उत्तर :- यद्यपि पूर्वाचार्योंने जीव को व्यावहारिकता कही है, सा तूलाविद्याकार्य मृगजलस्वप्नादि प्रातिभासिक के अपेक्षा कही है, ब्रह्म की अपेक्षा नहीं. काहे तैं, इस संसार में यथा मृगजलस्वप्नादिक तूलाविद्यारूप भ्रम का कार्य होनेतें प्रातिभासिक है, - तथा जीवजगत् भी मूलाविद्यारूप भ्रम का कार्य होनेतें परब्रह्म में प्रातिभासिक है.

तत्र इत्थं व्यवस्था जानणी. -

जगत् तो रज्जुसर्पादिकोंकी नाई आभासवाची प्रातिभासिक है. अरु जीव जलस्थसूर्यप्रतिबिंबादिकोंकी नाई प्रतिबिंबरूप प्रातिभासिक

है. अयं प्रतिभास अविद्यातेंही होवे है. अरु जीव की परब्रह्मता नष्ट न होके, सो अविद्या में प्रतिबिंबित है. जातें वो प्रातिभासिक भी कहावे है.

प्रश्न ६० :- परब्रह्मरूप में अविद्या कैसी स्थापित भयी?

उत्तर :- अविद्या की सिद्धी अनुमान से वा युक्ति से नहीं होती; तो अनुभवरूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे होती है. (**य६-१९**)

'अहं परमानन्दरूपम् ईश्वरं न जानामि' ॥

'अहं सुखी' ॥ 'अहं दुःखी' ॥ 'अहं मोहापन्नः' ॥

ऐसा अनुभव सब जीवोंको अनादि कालतें चला आवता है. तहां सब अविद्याका तो मनुष्यों को अनुभव है. और **'अहं परमानंदरूपमीश्वरं न जानामि'** यह अंश छोरिके **'अहं सुखी'** । **'अहं दुःखी'** ऐसे दो अंशोंका ज्ञान तो पशुपक्षियों को भी है. और **'अहं मोहापन्नः'** इस एक अंश का ज्ञान वृक्षपाषाणोंको है. यह गोचरता-रीति जणाई है. प्रधानगौणतासे तो अविद्या के चारही अंशोंका ज्ञान सब जीवोंको है.

वृक्षादिक जीवोंकी अविद्या

प्रश्न ६१ :- मनुष्य छोरके वृक्षादिकों को न्यून अविद्या का जो अनुभव है, तो तिनके अविद्या की निवृत्ति शीघ्रही हो जावेगी ?

उत्तर :- नहीं. मनुष्य छोरके वृक्षादिक जीवोंको न्यून सत्त्व होनेतें, अरु तम आदिकोंकी प्रधानता होनेतें अविद्या के न्यून अंशों का अनुभव है. सत्त्व के बलतें न्यून अंशों का अनुभव नहीं.

जातें, तिनके अविद्या की शीघ्र निवृत्ति बने नही, यथा किसी पुरुष को वातादि दोषबलतें विषयों की प्रतीति होवे नही, तथापि तिस पुरुष की विषयनिवृत्ति लोक में मानी नहीं, तथा तमःप्रधानता के बलतें नरवर्जित तर्वादिक जीवों को अविद्याका न्यून अंशानुभव है. जातें तिन जीवों को शीघ्र अविद्यानिवृत्ती का अधिकार नहीं.

प्रश्न ६२ :- तो सत्त्वके बलतें न्यून अविद्या के अंश का अनुभव कोई जीवोंको है ?

उत्तर :- हां मनुष्यके ऊर्ध्व जे देवादिक तिनोंको ऐसाही अनुभव

है. यथा, किसी पुरुषकी ध्यानादिकतें विषयनिवृत्ति लोक में सत्य मानी जाती है, तथा देवादि जीवोंको अविद्याका न्यून अंशानुभव सत्त्व के बलतें मान्या जाता है. एषा **विद्यारण्यादिकों की रीति** है.

* अरु प्रधानगौणता से अविद्या के सर्वांशका सर्व जीवोंको अनुभव है. इयं **भगवद्गीता की रीति** है.

* अरु **योगवासिष्ठ की रीती** से तो चिदाकाशके किसी एक देशमें अनादि **(य६-२०)** अविद्या फुरती है. सा कौनसे समय कैसीभी फुर जावेगी. जाका नियम नहीं.

* मात्र तटस्थलक्षण से तिस अविद्याकार्य की उत्पत्ति, स्थिति, लय होना, एषा **ईश्वरकीही नीति** है. इति.

* ऐसे अविद्याका अनुभव सर्वजीवप्रत्यक्ष है. इदं **'शारीरक शांकरभाष्य'** के आरंभ में कह्या. यामें कोई भी ग्रंथकार का वाद नहीं. सो विचारी पुरुषनें जाणिलेना.

अयं अनुभव अनादि है. क्यौंकि, जो कोई इसका आरंभ जानना चाहता है, तिसको ऐसा पूछना -

''**१.** तूं साक्षीरूप व्हयके अविद्याका आरंभ जानेगा, तो संभवता नहीं. काहे तैं, भ्रांतिरहितको भ्रमका आरंभ जानना असंभव है. और -

२. अविद्या में आयके अविद्या का आरंभ जानना चाहे, तोभी बने नहीं. क्यौं कि, भ्रांतिष्ट पुरुषों से भ्रमका आरंभ जानना अशक्य है. क्यौंकि, 'भ्रमको जानेमात्रहीसे भ्रम दूर होता है,' इस न्यायतें, अविद्याका आरंभ जानना अशक्य है.''

अविद्या में प्रातिभासिक चेतनही जीव है.**'आभास एव च'** एतत् व्याससूत्र तहां प्रमाण है.

अविद्याका ज्ञानही नहीं होता,

वह अनुभवसे सिद्ध है

प्रश्न ६३ :- अविद्याका ज्ञानही नहीं होता, तो सा अनुभवसे सिद्ध है, यह कहनेका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर :- यहही तात्पर्य है की,

१६

१ - अविद्या अपना अनुभव नहीं कराती,

२ - किंतु अधिष्ठान के लोप का अनुभव करावती है,

३- और दुसरे विपरीत पदार्थोका अनुभव करावती है.

इदमेव उसका लक्षण है. यथा भ्रांति. तूलाविद्या रज्जु के लोप का और विपरीत सर्प का अनुभव करावती है, तथा मूलाविद्या भी **'परमानंदरूपमीश्वरं न जानामि'** इस ब्रह्म के लोप का और दृश्यरूप विपरीत संसार का अनुभव करावती है. स्वयं अपना अनुभव नहीं करावती.

क्यौंकि, अधिष्ठान के लोप से वा कार्यसेही भ्रम का अनुभव होना सिद्ध है. ''वस्तुतः भ्रमका अनुभव होवेगा तो भ्रमही निवृत्त होवेगा.''

जातें ज्ञान नही हुवा, और आरंभ नही समझा, तोभी अनुभवसे अनादि-अविद्यासिद्धि सिद्ध भयी.

प्रश्न ६४ :- स्वरूपसे जो अविद्या का ज्ञान नहीं होता है, तो उसकी निवृत्ति कैसी होवेगी ? **(य६-२१)**

उत्तर :- अधिष्ठानज्ञान से उसकी निवृत्ति होती है.

आवरण और विक्षेप की निवृत्ति

प्रश्न ६५ :- तो ज्ञानमात्रही से निवृत्ति होती है. भक्ति की क्या अवश्यकता है ?

उत्तर :- ज्ञानमात्र से **'आवरण'** की निवृत्ति तो होवेगी. किंतु **'विक्षेप'** की निवृत्ति नहीं होवेगी. जैसे, रज्जुसर्पनिवृत्त्यनंतर भयकंपादि रहते हे, सो 'विक्षेप' है.

प्रश्न ६६ :- रज्जुसर्प के भयकंपादिक थोडे काल रहते है.

उत्तर :- रज्जुसर्पभ्रम तूलाविद्या हानेसे थोडा काल रहता है. मूलाविद्या अनादि होनेसे उसका विक्षेप कितना रहता है, यह कोई जाणे नहीं. इसलिये भक्तिही करना अवश्यक है.

प्रश्न ६७ :- विक्षेप नहीं निवृत्त हुवा, तो क्या हानि है ?

उत्तर :- वाहवा ! हानि तो विक्षेपहीसे है. आवरण से क्या है?

रज्जू के अज्ञान से कुछ हानि नहीं. परंतु रज्जूसर्पभयादिकों से मृत्युसमान दु:खवृद्धि देखी है.

प्रश्न ६८ :- तो फिर विक्षेपनिवृत्तिकाही प्रयत्न करना. आवरणनिवृत्ति की क्या जरूर है ?

उत्तर :- श्रवण करो. आवरणनिवृत्ति हुयेपर विक्षेपनिवृत्ति कभीतोभी निश्चयकरके होवेगी. किंतु, आवरणनिवृत्ति जो नही कीनी, तो विक्षेपनिवृत्ति देव के पितासे भी कभी नहीं होवेगी.

यथा, रज्जूसर्प निवृत्ति हुवा, तो भयकंपादिक कभीतोभी निश्चयकरके निवृत्त होवेंगे. अरु नहीं निवृत्त हुवा, तो किसीभी यत्नसे भयकंपादिक निवृत्ति का संभव नहीं.

प्रश्न ६९ :- रज्जुसर्प के समीप से दुसरी जगा पलायन करनेसे भयकंपादिक निवृत्त भी हो जावेंगे, फिर सर्प रहे ना ?

उत्तर :- रज्जुसर्प अल्प देश में व्यापक होनेसे दुसरी जगा पलायन करोंगे. परंतु मूलाविद्या तो अनंतब्रह्मांडव्यापक है. तिसको छोर दुसरी जगा पलायन करनेका संभवही नहीं. हां, भक्तीसे ईश्वररूप देश में जो पलायन करोंगे, तो हमे इष्टापत्ति है. **(य६-२२)**

प्रश्न ७०:- तूलाविद्या अल्पदेशव्यापक है, और मूलाविद्या अनंतब्रह्मांडव्यापक है, ये क्यौंकर गृहीत करना ?

उत्तर :- गृहीत नहीं. अविद्या की अनुभव से सिद्धि होती है. जाते, इस में अनुभवही प्रमाण है. सो इत्थं है. –

रज्जुसर्प कोई एक पुरुषको कोई एक भूमीके कोनों में कस्मिंश्चित् समयमें दिखेंगा. परंतु, **'अहं परमानंदरूपम् ईश्वरं न जानामि'** इत्यादि पूर्वकथितचतुष्टयरूपा अविद्याका तो सब ब्रह्मांडस्थ जीवों का अनुभव है. जातें मूलाविद्या सब ब्रह्मांडव्यापक है. तथापि ईश्वरकी अपेक्षा व्याप्य है.

जैसा, मृगजल कितनाभी व्यापक हुवा, तो सूर्यकी अपेक्षा व्याप्य है.

'जितनी अविद्या व्यापक है, तितनाही जीव व्यापक है.'

'सृष्टि यह जीवाभास है.'

जैसे, एकही पुरुष स्वप्न में अनेक पुरुषरूप होता है, और निद्रा के बलतें परस्परोंको पृथक् देखता है, तैसे जीव भी अविद्या के बलतें ताको वश व्हयके अपनेको पृथक् पृथक् देखता है.

'तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्ध:।।'

'अविद्यावशगस्त्वन्य:।।'

'तद् वैचित्र्याद् अनेकधा ।।'

इत्यादि श्रुतिस्मृति प्रमाण है. एवं, **ईश्वराभास जीव और जीवाभास सृष्टि, यह दृष्टिसृष्टिवादियोंका सिद्धांत है.** कोई 'अनेकजीववाद' भी मानते है.

दृष्टिसृष्टिवाद में भक्ति

प्रश्न ७१ :- 'अनेकजीववादियों' में तो भक्ति संभवेगी, किंतु **'एकजीववादियों'** में भक्ति का कैसा संभव है ?

उत्तर :- यथा, स्वप्न में कोई पुरुष मर गया तो स्वप्न में प्रेत तो गिरता है, लेकिन् ओ एक मरनेसे सब स्वप्नका नाश नहीं होता है. तैसे, एक जीवाभास मुक्त होनेसे भी सब जीवों का मुक्तिसंभव नही होता है. और - स्वप्न एक पुरुषका है, तौभी अपने अपने खानेका उपाय सब पुरुष करते है, तैसे यद्यपि जीव एक है, तथापि अपनी भिन्नता अपने को अनुभव से प्रतीत होती है. तो भक्त्युपाय करनेमें क्या प्रतिबंध है?

जीवकी एकता और अनेकता कुछ सत्यतानिश्चय के वास्ते कही नहीं, केवल निवृत्ति के वास्तेही कही है.

यथा, कोई पृथक् घट रखके उस में प्रतिबिम्ब **(य६-२३)** मानते है, और कोई समुद्र में एक बडा प्रतिबिम्ब मानके, उसमेंसे घट भरलेनेपर घट में भिन्न भिन्न प्रतिबिम्ब मानते है. परंतु किसीने भी घट फोडा, तो प्रतिबिम्ब बिम्बमेंही एकदम जा मिलता है. तिसको समुद्र में जाय पश्चात् बिम्बमें मिलनेका काम नहीं पडता.

तथा, अनेक जीव माने, वा एक जीव माने, तोभी एकजीववालेंको

प्रथम अपने मूलाविद्यामें मिलिकैं पश्चात् ब्रह्म में मिलनेकी अवश्यकता नहीं. किंतु एकदमसेही अपने आभासोपाधि अविद्याकी निवृत्ति होनेपर ब्रह्म में मिलता है. अनेक-जीव-वादियोंकी तो यहां शंकाही नही.

प्रश्न ७२ :- आवरणनिवृत्ति करके विक्षेपनिवृत्ति होनेतक भक्तिरहित रहनेको कौनसा प्रत्यवाय है ?

उत्तर :- विक्षेपसे दुःख होता है. जातें, विक्षेपनिवृत्त्यर्थ भक्तीकी अत्यंतावश्यकता है.

प्रश्न ७३ :- तितिक्षू पुरुष को जैसा दुःख सहन करना है, तैसे आवरणनिवृत्त्यनंतर दुःख सहन करके भक्तिरहित रहनेको क्या हरकत है ?

उत्तर :- तितिक्षू पुरुष दुःख सहन करता है. तिसकी दुःखानिवृत्ति नहीं होती है. तथा, आवरण निवृत्यनंतरभी दुःख सहन करना, और यहभी कितने कालतक, ऐसा निश्चय नहीं. दुःख निवृत्त होगा, यह तो निश्चय है. लेकिन्, कालनिश्चय नही. ऐसा जो आवरणनिवृत्यनंतर है, तो फिर आवरणसहित अनंतजन्म दुःख भोगनेमें क्या प्रत्यवाय है ?

प्रश्न ७४ :- कुछ नहीं.

उत्तर :- तो तूं बद्ध है. हमारा मुमुक्षुओं को कहना है बद्ध को नही.

प्रश्न ७५ :- हे सखि ! मैं आपको कुंठित करनेके लिये प्रश्न नहीं करती हूं. आपने 'तूं बद्ध है, हमारा बद्धको कहना नही' यह बचन मेरे अनिष्टापत्ति के अर्थ कह्या. तन्माम् शिरसा मान्य है.किन्तु तिस बचनतें मेरी शंकानिवृत्ति भयी नही. **(य६-२४)**

आधिकारिओं को प्रारब्ध-विचार

उत्तर :- हे सखि, तूं मुमुक्षू है वा नहीं यह देखनेके लिये मैने अनिष्टापत्ति कीनी थी. तथापि तेरी तीव्र मुमुक्षा प्रबल देखिकैं, अब मच्चेतसि कांतकृपाविर्भूति हुई. जातें, जथा तव वांछा होवे, तथाविध प्रश्न करनेको मेरी ओरते प्रत्यवाय है नहीं.

प्रश्न ७६ :- हे सखि! आवरणनिवृत्यनंतर कभीतोभी विक्षेपनिवृत्ति

होवेगी, अयं यदि त्रिवार निश्चय होवे तो वर्तमान-देहपातानंतर निश्चय करके मुक्ति प्राप्त होवेगी. अयंही मेरा प्रश्न है.

उत्तर :- वर्तमानदेहपातानंतर विक्षेप की अवश्य निवृत्ति होवेगी यह नियम नहीं. काहे तैं, **'अनुभवाद्वैतवादि'**योंके मत में विक्षेप का प्रतिबंधक प्रारब्ध है. जब, तिस प्रतिबंधरूप प्रारब्धकी निवृत्ति व्हय जावेगी, तब जिस चेतनतें पूर्व आवरणनिवृत्ति हुई, उसी चेतनतें विक्षेपकी निवृत्ति व्हय जावेगी; अन्यथा नहीं.

फलोन्मुख कर्म का नाम 'प्रारब्ध' है. सो एक जन्ममात्र का होवे नही, किंतु अनेकजन्ममात्र का होवे है. श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थाध्याय के **'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा'** इस वाक्य पर श्रीमन्मधुसूदनाचार्य स्वामीजीने टीका करी, तामें यह कह्या है की, आधिकारिक जे पुरुष है, तिनका प्रारब्धसंज्ञक अधिकार ज्ञान के अनंतर भी अनेक जन्म रहे है. **'यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्'** एतत् व्याससूत्र तहां प्रमाण है. सो अधिकारसंज्ञक प्रारब्ध अनेक जन्म उपासकोंकाही रहे है; अन्योंका नही.

यथा, प्रत्येक कल्प के आरंभ में ब्रह्मज्ञान व्हयकेभी जैसे सनत्कुमारादिक पुनः पुनः उपजते है, अरु भगवान् वसिष्ठकेभी ज्ञानानंतर जन्मत्रय पुराणादिकनमें कहे है, ऐसा यद्यपि सिद्धांत है, तथापि तहां एषा व्यवस्था है. -

'अनेक जन्म प्रारब्ध उपासकोंकाही रहे है' ऐसा बचन कहा है. 'ईश्वरोपासकोंका रहे है' ऐसा बचन नहीं. जाते यह अनुमान होवे. उपासक शब्द सामान्य होनेतें, ईश्वरोपासकोंका तो अनेक कल्प अनेक जन्म सुखरूप प्रारब्ध शेष रहे है. **(य६-२५)**

अरु विषयोपासकों का प्रारब्ध तो अनेकजन्म दुःखरूपही रहे है.

अरु प्रारब्ध प्रतिबद्धक के निवृत्तिबिना विक्षेप की निवृत्ति बने नहीं.

अतो हे प्यारी ! आवरणनिवृत्तिपश्चात् वर्तमान देहपातानंतर

नियता मुक्ति संभवे नहीं. यह **'अनुभवाऽद्वैत'**वादियोंका' (श्रीज्ञाने.अमृतानुभव) मत है.

भक्तों का प्रारब्ध

प्रश्न ७७ :- यदि ईश्वरोपासकोंका सुखरूप प्रारब्ध शेष रहे है, और प्रारब्धप्रतिबंधक के निवृत्तिबिना विक्षेपनिवृत्ति नहीं, यह सिद्धांत है, तो भगवद्भक्तोंने विक्षेपरूप अविद्या के निवृत्ति की आशाही नहीं करना. क्यौंकि, जितनी जितनी भक्ति बढावेंगे, उतना उतना सुखरूप प्रारब्ध बढता जावेगा. अरु प्रारब्ध तो सुखरूप वा दुःखरूप किसी रीतीका हो, तोभी विक्षेपनिवृत्ति का प्रतिबंधक है, यह पूर्व कह्या. जाते, भगवद्भक्तोंकी अविद्यानिवृत्ति सर्वथा नहीं बनेंगी. ऐसा जो सुखरूप प्रारब्ध बढावणा, तो कुछ जन्मतक दुःखरूप प्रारब्धकाही भोगिकें नाश करना इस में क्या प्रत्यवाय है ?

उत्तर :- ज्ञानानंतर भक्तीतें सुखरूप प्रारब्ध बढे नहीं. किंतु ईश्वरकृपातें नाश व्है जावे है. सो भागवत में भगवान ने गोपी को कह्या है.

' न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिताः क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ (भागवत)

अनेक जन्मपर्यंत जो ईश्वरोपासकोंका सुखरूप प्रारब्ध कह्या, सो **ज्ञानपूर्वांगोपासनाकृतज्ञानानंतर पूर्वांग-उपासना-अनुसृत-ध्यानवृत्ति-ध्येयपरिनिष्ठित** जनोंका जाणिलेना. तदपि ज्ञानोत्तरभक्तिनिष्ठों का ईश्वर की कृपातें नष्ट व्हय जावे है.

तथाविध दुःखरूप प्रारब्धभी अनेक जन्म होवे है. अरु तहां किसीकी कृपा नही होनेतें, दुःख भोगतेबिना निवृत्त होवे नहीं.

मधुसूदनसरस्वती : अद्वैतसिद्धी

प्रश्न ७८ :- मधुसूदनाचार्यजीने 'अद्वैतसिद्धि' ग्रंथमें अविद्या में 'अर्थापत्ति' कही है, सा आवरणमेंही बने है. अरु ज्ञानतें आवरणनिवृत्ति व्हय जावे है. जातें, आवरणनिवृत्यनंतर विक्षेपरूप अविद्या का अंश

शेष रहता है, एषा कल्पना समीचीन नहीं. **(य६-२६)**

उत्तर :- 'अद्वैतसिद्धी'में जो अविद्याके विषय 'अर्थापत्ति' प्रमाण कह्या, तत् स्वयं अविद्या में कह्या है. यथा,

'अहं परमानंदरूपं न जानामि'।
'दुःखरूपं वैचित्र्यं जगदिदं पश्यामि' ।

ऐसा अनुभव सब जीवोंको है. सो अनुभव ब्रह्मसे होवे, तो ब्रह्म का ब्रह्मकोही बंधन बनेंगा. अरु ब्रह्मतें भिन्न कोई पदार्थोसे होवे तो द्वैत नित्य रहेंगा. जातें, ब्रह्माश्रया, अनाद्यनंता, ऐसे अविद्या की कल्पना विक्षेप आवृत्ति(ति?)रूप अनुभव के अर्थ से वेदांतियोंने करी है. **'अर्थेनापद्यते इति अर्थापत्तिः'** ॥ तत् केवल आवरण में बने नहीं.

अविद्यालेश : अप्पयदीक्षित

प्रश्न ७९ :- तो ज्ञानानंतर अविद्याकाही लेश रहता है, ऐसा अभ्युपगम हुवा ?

उत्तर :- हां. कोईएक वेदांती ऐसाभी कहे है. जेसे लसुणके भांडमेंसे लसुण निकाल लेनेपरभी बिना धोये लसुणका गंध तिस भांडको बहुत कालतक रहे है. - तथा, आवरणनिवृत्यनंतरभी भक्तिबिना प्रारब्ध के प्रतिबंधतें विक्षेपरूप अविद्याका अंश बहुत कालतक रहे है. तिस अंशकोही अप्पयदीक्षिताचार्यजी ने **'सिद्धांतलेशसंग्रह'** ग्रंथ में **'अविद्यालेश'** नाम करी कह्या है.

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति.

तत्वज्ञान, वासनाक्षय, और मनोनाश.

प्रश्न ८० :- सर्वज्ञात्ममुनि तो आवरणनिवृत्ति के अनंतर अविद्या का लेश नहीं माने है?

उत्तर :- तिनका यह अभिप्राय है, की तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, अरु मनोनाश इन तीनोंको जीवन्मुक्तीके हेतु विद्यारण्यादिक मानते है.

(समन्वय) - तहां इयं व्यवस्था है. तत्त्वज्ञानसे अविद्यानिवृत्ति होनेतें, अर्थात् वासनाक्षय व्हयही जावे है. तथापि विरक्तचुपरतीसे मनोनाश किये बिना वासनाक्षय का रक्षण होवे नहीं. यह **'जीवन्मुक्तिविवेक'**

ग्रंथ में कह्या है.

अरु **पंचदशी** के **'चित्रदीप'** प्रकरण में तो विरक्त्युपरतिरहित ज्ञान जिसको है, तिसको विदेहमुक्ति निश्चयकरके है, किंतु जीवन्मुक्ति नही.

अरु ज्ञानरहित **(य६-२७)** विरक्त्युपरति जिसको है, तिसको तपोबलतें पुण्यलोक की प्राप्ति होवे है. जीवन्मुक्ति वा विदेहमुक्ति निश्चयकरके होवे नहीं.

तत्त्वज्ञानतें देहपातानंतर दुःखनिवृत्तीका नाम 'विदेहमुक्ति' है.

अरु,

जीवत्कालमेंही तत्त्वज्ञानतें दुःखनिवृत्तीका नाम 'जीवन्मुक्ति' है.

सा जीवन्मुक्ति, विरक्त्युपरति अरु तत्त्वज्ञान, ये तीनोंभी जिन पुरुषोंमें रहते है, तिनको होवे है.

अतो, तत्त्वज्ञानके पूर्व जो साधनचतुष्टयसंपन्न हुवा, अरु तिस साधनचतुष्टय के बलतेंही विरक्त्युपरति जो उत्पन्न व्हय गयी, तो तत्त्वज्ञानके अनंतरभी तिसका रक्षण करना.

गुरूकी कृपा

अरु साधनचतुष्टयसंपन्न नहीं होनेपरभी गुरूकी कृपारूप वाक्यतें कदाचित् **यह जगत् सब संकेतरूप है,** ऐसा तत्त्वज्ञान किसीको व्हय गया, तो ज्ञान के पश्चात् -

मनोनाश तथा दृष्टदुःखनिवृत्तिरूप-जीवन्मुक्तिप्राप्ति के अर्थ विरक्ति अरु उपरती का अभ्यास करना.

सा विरक्ति अरु उपरति भगवद्भक्तीतेंही शीघ्र उत्पन्न होवे है, और साधनोतें नहीं.

प्रश्न ८१ :- *विरक्ति विषयदोष दृष्टीतें, अरु *उपरति योगाभ्यासतें उत्पन्न होती है, ऐसा विद्यारण्य कहते है. तो भगवद्भक्तीकी क्या अवश्यकता है ?

उत्तर :- 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' इत्यादि सूत्रोंसे पतंजल्याचार्यजी ने योग का भक्ती में तात्पर्य कह्या है. अरु -

'योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥' भगवद्गीता

इत्यादि श्रुतियांभी तहां प्रमाण हैतिया है. अरु भक्तिबिना विषय के ऊपर दोषदृष्टि करे तो तिन विषयोंका द्वेष उपजे है. सो द्वेष क्लेश होनेतें अधिक दुःखप्राप्तिही होवे है. अतो विरक्ति का भी विषयार्पणरूपभगवद्भक्ति में तात्पर्य युक्तिसिद्ध है. एवं विरक्त्युपरतीका भक्ती में तात्पर्य होनेतें, ज्ञानानंतर भक्ति करनेतें शीघ्रही दृष्ट दुःख की निवृत्ति व्हय जावे है. यह अनुभव से सिद्ध है. इस विषय में अब शंका करना योग्य नहीं. **(य६-२८)**

प्रश्न ८२ :- अच्छा ! अब तुम्हारा कहना क्या है सो बोलो.

उत्तर :- हमारा कहना यह ही है की, आवरणविक्षेपरूप अविद्याके निवृत्त्यर्थ भगवद्भक्ति करना.

अविद्याका अधिष्ठान

प्रश्न ८३ :- अविद्या का अधिकरण निर्गुण होवेगा. सगुण कैसा होवेगा?

उत्तर :- अविद्या अनुभवसे सिद्ध है. उसका अधिकरण निर्गुण है, सगुण नहीं, ऐसा कहनेमे कुछ फायदा नहीं. और अविद्याका अधिकरण तो सामान्य-चैतन्य है. व्यापकका नाम सामान्य है. सगुणकी व्यापकता पूर्व सिद्ध करी, जातें अविद्याका अधिकरण सगुण भी संभवे है.

प्रश्न ८४ :- तो परमेश्वर अविद्या को विरोधी नहीं हुवा. और विरोधीबिना निवृत्ति नहीं बनेंगी ?

उत्तर :- हां बनती है. 'यह मृगजल जल नहीं' इस प्रकार मृगजलस्थ भ्रम की निवृत्ति सूर्यप्रकाशसेही होवे है, तहां तिसरे प्रकाश की कुछ अपेक्षा नहीं, तथा * परमेश्वराधिष्ठित अविद्या की निवृत्ति भी भक्तोंको उसके भक्तीसेही होवे है. अथवा, * रज्जुसर्पविरोधी दीप की अपेक्षा है, तथा अपेक्षाही चाहे, तो 'अविद्या के विरोधी सत् मानना.'

प्रश्न ८५ :- भक्ती से दोनों प्रकारकी अविद्या कैसी निवृत्त होती है ?

उत्तर :- पूर्वकथित जे भक्ती में छः गुण, तत्स्थ ज्ञानगुणसे तो अविद्याके आवरणप्रकार की निवृत्ति बने है. अवशिष्ट पांच गुणोंसे विक्षेपप्रकार की निवृत्ति बने है.

अवतार

प्रश्न ८६ :- सा ध्यानादिगुणयुक्त भक्ति व्यापकपरमेश्वरविषय प्रथमही कैसे संभवे है ?

उत्तर :- नहीं संभवे तो क्या करना? भक्ति अवतारदशा में बनती है.

प्रश्न ८७ :- अवतारदशा में तो जीव के समान अल्पता होवेंगी?

उत्तर :- नहीं. अवतार अविद्याबद्ध नहीं होते है. इसते अल्पता नहीं होती है. **(य६-२९)**

प्रश्न ८८ :- तो अवतार कैसे होते है ?

उत्तर :- उस **सगुण परमेश्वरकाही १. गर्भ में, २. हृदय में, वा ३.बाह्य देश में आविर्भाव होना, 'अवतार' है.**

प्रश्न ८९ :- अवतार का क्या लक्षण है ?

उत्तर :- एक से अधिक जन्म होवे, तोभी मुक्तताभंग नहीं, यह अवतार का लक्षण है.

वामदेव को गर्भ में ज्ञान हुवा था, जातें सो जन्मसमय मुक्त भया था; परंतु तिन्ने दुसरा जन्म नहीं लिया. और -

'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि' ।

अणे

'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्' ।

इत्यादि श्लोकोंमें भगवत् की सिद्धता और नाना जन्म प्रतीत होते है. जातें श्रीकृष्ण अवतार है.

अवतार और मुक्तों में भेद

प्रश्न ९० :- तो जीवन्मुक्त भी अनेक जन्मरूप फलोन्मुख कर्म

हुवा तो भगवद्भक्तीतें अपने मुक्तीको रक्षण करते है, तिनपर अवतार के कृतलक्षण की अतिव्याप्ति होवेगी ?

उत्तर :- जीवन्मुक्त भक्ति करते है; अरु अवतारोंको किसीके भक्तीकी अपेक्षा नहीं.

अथवा आवरणविक्षेपनिवृत्तीके पश्चात् जीवन्मुक्त पूर्ण होते है. तैसे अवतार में नही. वे स्वयं पूर्ण होते है. इतनाही मुक्तोंमें अरु अवतार में भेद है.

प्रश्न ९१ :- जीवत् कालमें भक्त ईश्वरही है. यह जो आपने पूर्व कहा, तिसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर :- तिस बचनका लक्षणावृत्तीमें तात्पर्य है. इदं निरूपण **'विवेकचूडामणी'**में भी श्रीमच्छंकराचार्यजीने कऱ्या है.

'ऐक्यं तयोर्लक्ष्यतयोर्न वाच्ययोर्निगद्यतेऽन्योन्यविरुद्धधर्मिणोः ।
खद्योतभान्वोरिव राजभृत्ययोः कूपांबुराश्योः परमाणुमेरोर्वो**: ॥**

(विवेकचूडामणी) ????????

प्रश्न ९२ :- तो एषा लक्षणावृत्ति व्यक्त धर्म में संभवे है, वा अव्यक्त धर्म में संभवे है ?

उत्तर :- मुक्तोंके प्रारब्धकालिन तो अव्यक्त धर्म में संभवे है. अरु प्रारब्धनिवृत्ति होनेतें विक्षेपनिवृत्त्यनंतर व्यक्त धर्ममेंभी **(य६-३०)** संभवे है.

जीवोंके अरु परमेश्वर के ज्ञान की एकताही अव्यक्त धर्म है.

तिस ज्ञान को छोरिके, केवल व्यक्त मानहारेको भगवद्गीता में अबुद्धि कहा है.

अरु 'व्यक्त छोरिके केवल ज्ञानरूप अव्यक्त माननेहारेको अतिक्लेशतें मेरी प्राप्ति होवे है,' ऐसा कांतबचन है.

अतो **अव्यक्तरूप ज्ञान तथा व्यक्तरूप पंचगुणोंके सहित भक्तीही परमप्राप्तिजनयित्री है.**

विदेहमुक्ति में भी भक्ती

प्रश्न ९३ :- तो परमप्राप्ति फल होनेके पश्चात् साधनरूप भक्तीका नाश व्हय जावेगा ?

उत्तर :- जैसे पुत्र होनेपर मातापिता का नाश नहीं होता है, किंतु कुलवृद्धि मात्र होती है. तैसे परमप्राप्ति के अनंतर भक्तीका नाश नहीं होता है. किंतु प्रेमवृद्धि अधिक होती है.

यहां 'परमप्राप्ति' शब्द विदेहमुक्तिवाची है.

प्रश्न ९४ :- विदेहमुक्तीमें अत्यंत ऐक्यता होनेतें भक्ती कैसी संभवेगी?

उत्तर :- संकेतदृष्टीसे अत्यंत ऐक्यता तो जीवन्मुक्तीमेंभी है. तहां जैसी भक्ति होवे है, तैसी प्रेमरूपसे विदेहमुक्तीमेंभी होवे है. तत् प्रेम अनिर्वचनीय है. बोलनेके योग्य नहीं.

नारदजीने कह्या है **'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्'**

अरु ताततेभी कह्या है :-

चौपाई

'चंदनसौरभ चन्दनमाही । चंद्रिका कृत्रिम शशिमाही ।
तथा क्रिया निश्चयकरि नाहीं । किंतु भक्ति अद्वैत के माही ॥

दोहा

'तहां अनुभवहि प्रमाण है नहीं शब्दजंजाल ।
अतो ज्ञानोत्तर धरो हरिचरणोंपर भाल ॥'

एवं 'अमृतानुभव में भी' श्रीगुरुनाथने प्रतिपादन कऱ्या है.

दोहा

'कोई एक अकृत्रिम भक्ति निजसुखधाम ।
ज्ञानभूमिका योगका निर्विकल्प बिश्राम ॥'

अवतार के लक्षण

२२

प्रश्न ९५ :- अवतारका दृष्ट लक्षण क्या है ?

उत्तर :- अन्यथाकर्तुं शक्ति आदि.

प्रश्न ९६ :- एते लक्षण तो विक्षेपनिवृत्त्यनंतर ईश्वरसायुज्यगत सिद्धोमेंभी मिलते है. **(य६-३१)**

उत्तर :- तदा सिद्धकी पृथक् संज्ञा नहीं रहती है, ईश्वरसंज्ञा हो जाती है, जातें विरोध नही.

पृथक् सिद्धोंको **'अन्यथा कर्तुं शक्ति'** नहीं बनेंगी, और परमेश्वरको बनती है. यथा श्रीज्ञानेश्वरने भैंसाको वेद कहनेको लगाया. जातें हमारे तात है. यह भी एक अवतारोंका दुसरा लक्षण है.

अवतारका नित्यत्व

प्रश्न ९७ :- 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' इस श्रुतीमें अवतारको कल्पित कह्या है.

उत्तर :- * उपासनार्थ जे अवतार है तिसकोही कल्पित कह्या है. * भक्त्यधिकरण अवतारको कल्पित कह्या नहीं. यथा,

१ - 'त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः'

श्रुत्यर्थ :- ''पूर्णमेंसे पूर्ण निकाले तो जैसा पूर्णही रहता है. तैसा तूं विश्वतोमुख होनेतेभी, तैसाही तेरा जन्म श्रवण होता है. अर्थात्, आविर्भावसमय वा तिरोभावसमय, तूं वैसाही **'विश्वतोमुख'** है.' और

२ - 'संभवामि युगे युगे' ।

३ - स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि' ।

इत्यादि श्रुति, कल्पनारहित स्वयं अवतारतामें प्रमाण है.

प्रश्न ९८ :- तो अवतार भी नित्य भये ?

उत्तर :- हां. नित्य होते है. नीलकंठाचार्यने जो गीतापर टीका किई, उसमें कहा है की, ''परमेश्वर अपने अवतारशरीरका उपसंहार नहीं करता है.''

'प्रकृति' अरु 'माया'

प्रश्न ९९ :- 'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया' । इस श्लोक में भगवान ने अपने शरीर को 'मायाजनित' कह्या. तो अवतार की नित्यता कैसी बनेंगी ?

उत्तर :- 'प्रकृति' अरु **'माया'** शब्द तहां **'शक्तिवाचक'** है.

तहां सज्जनरक्षा अरु दुर्जननाश, इनके अर्थ जो अवतार में शक्ति दीखती है, ताका नाम **'प्रकृति'** है.

अरु केवल लीलाविलासरूप अवतारशक्तिका नाम **'माया'** है. **'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' ।** इदं ब्रह्मसूत्र तहां प्रमाण है. सूत्रमें 'लोकवत्' यह प्रथम शब्द होनेतें, अरु 'लीला' शब्दके पश्चात् 'कैवल्य' यह शब्द होनेते, दृष्टांतरूप सर्व लोक, लीलाका एक देश हैतिये. **(य६-३२)** अवशिष्ट अवतारलीला स्वतंत्र है इति.

शक्ति-शक्तिमत् अभेद होनेतें इन लीलादिशक्तीकी पृथक् कल्पना करनी नहीं. शक्ति-शक्तिमत्, धर्म-धर्मी, इत्यादि भेदपूर्वक शब्दनके प्रयोग बालबुद्धीको जणावणेके लिये किये जाते हैतिये.

प्रश्न १०० :- सज्जनकी रक्षा अरु दुर्जनकी शिक्षा यह विषमता विदित होनेते, अवतारके शरीरमें सांख्यपरिकल्पित सत्त्वादिगुण-साम्य-प्रधानका अभ्युपगम अनुमान होता है.

उत्तर :- साधूको अरु दुष्टको समान मोक्षफल प्रदान करनेतें अवतारोंमें विषमता नहीं. रक्षा-शिक्षा केवल अपनी अपनी बुद्धीतें प्रतीत होवे है.

जैसे, चंद्रमा देखकर चकोरको आनंद होवे है, विरहिणीको ताप होवे है, अरु तस्करों को द्वेष उपजे है. अयं केवल बुद्धिमात्र आरोप है. शशांक तो सबको प्रकाशही देवे है. तथा अवतारोंकी रीतिभी जाणिलेना. जैसे तातने कह्या है :-

दिंडी

गोपिकाको कामतें प्राप्ति मेरी । दैत्यदानवको द्वेषतें पधारी ।
प्रणतरक्षण ये खेल यस्य होवे । भक्तितें सो चित्तमें प्रभू पावे ॥

चौपाई

लीलामय केवल अवतारा । व्ह्यकरि मूर्ति जनभवतारा ।
मुक्त करत गुणगान जिनोंके । राखती हूं शिर पगपे तिनोंके ॥

अवतार-विग्रह के प्रकार

प्रश्न १०१ :- अवतार कितने प्रकारके है ?

उत्तर :- चार प्रकारके. १.उत्थानाधीन. २.कार्यार्थ. ३.उपासनार्थ. और ४. भक्त्यधिकरण.

१. उत्थानाधीन - वैकुंठादि लोकमें जाकर किसी प्रबल उत्थानसे जन्म लेना सो प्रथम अवतार है. जैसे इंद्रादिक.

२. कार्यार्थ - जगद्व्यवस्था करनेके वास्ते अवतार लेना सो द्वितीयावतार है. जैसे मन्वादिक.

३. उपासनार्थ - देवोंकी वा मनुष्योंकी उपासनारूप प्रार्थनासे अवतार लेना तृतीय है. यथा रामादिक. **'ब्रह्मणो रूपकल्पना'** यह श्रुति **'रामतापनीय'**में है.

४. भक्त्यधिकरण - 'एकाकी न रमते' इस श्रुतिवचनानुसार भक्तनके साथ क्रीडा करनेके लिये लीलासे अथवा स्वेच्छासे जो अवतार है सो चतुर्थ है. यथा श्रीकृष्ण. **(य६-३३)**

प्रश्न १०२ :- इसमें जाननेका कुछ विशेष है ?

उत्तरः- हां. उपासनार्थ और भक्त्यधिकरण, ये दो अवतार विशेष विग्रहवान् होते है.

प्रश्न १०३ :- विग्रहका नाम क्या है ? ये पृथक् पृथक् कहो.

उत्तर :- **१. कार्यविग्रह. २. शक्तिविग्रह. ३. वस्तुविग्रह. ४.लीलाविग्रह.** तहां -

१. प्रथम (कार्यविग्रह) तो दत्तात्रेयादिकोंमें रहते है.

२. द्वितीय (शक्तिविग्रह) रामादिकोंमें रहते है.

३. तृतीय (वस्तुविग्रह) व्यंकटेशादिकोंमें रहते है.

४. चतुर्थ (लीलाविग्रह) वैकुंठस्थ विष्णुआदिकोंमें रहते है.

५. और चारो एकत्र श्रीकृष्णमें रहते है.

पूर्णावतार ओर शिष्टत्वके लक्षण

प्रश्न १०४ :- यह सब श्रीकृष्णमेंही क्यौं रहते है ?

उत्तर :- वह पूर्णावतार है करके.

प्रश्न १०५ :- पूर्णावतारका लक्षण आपने पूर्व ईश्वरत्व और शिष्टत्व एकत्र कह्या था. तदंतर्गत ईश्वरत्व तो सांगोपांग कहा. अब शिष्टत्वका लक्षण कृपा करके कहिये.

उत्तर :- 'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्वे सति वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तृत्वं शिष्ट-लक्षणम्'

अर्थः- **१** - जिस साधनका जो फल मिलता है सो फल जानना, **'फलांश-भ्रांतिरहितत्व'** है. और

२ - साधन जानना, **'साधनांश-भ्रान्तिरहितत्व'** है.

३ - वेद को प्रत्यक्षानुमान से भी वरिष्ठ अभ्युपगम करके मानना, **'वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तृत्व'** है.

प्रश्न१०६:- वैदिककर्मकर्तृत्व शिष्टलक्षण क्यौं नही मानते हो?

उत्तर :- वह शिष्टका लक्षण नहीं होता. क्यौंकी, अखिल वेदकर्मकर्तृत्व मानना, वा किंचित् वेदकर्मकर्तृत्व मानना?

अखिल वेदकर्मकर्तृत्व जीवको शक्य नहीं. अरु जैमिन्यादिकोंने अपनी अपनी शाखाकाही कर्म किया. जातें, ते शिष्ट नही होवेंगे.

अरु किंचित् वेदकर्मकर्तृत्व माने तो भी समीचीन नहीं. **'मा हिंस्यात्सर्वभूतानि'** इस श्रुतीके अनुसार बौद्धादिकभी अहिंसा कर्म करते है, तेऽपि शिष्ट होवेंगे. अतो, वेदकर्मकर्तृत्व शिष्टलिंग संभवे नहीं. **(य६-३४)**

प्रश्न १०७ :- तो 'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व' शिष्टलक्षण मानो.

उत्तर :- वैसा माने तो मैथुनसाधनसे पुत्र होता है, और मैथुन का साधन स्त्री है, एवं 'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व' चार्वाकादिकों को संभवे है. **'अत इदमेव सिद्धमभवत्'** की, **'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्वे सति**

२४

वेदप्रामाण्याभ्युपगंतृत्वं शिष्टलक्षणम्' । एतत् शिष्टलक्षण मन्वादिकोंमें वास करे है.

१ - जातें, **मनु** क्षत्रिय होकेभी, ऋषियों को ब्राह्मणधर्म कहे, ते वेदप्रामाण्याभ्युपगमतासे कहे. वेदकर्मकर्तृत्वकी तिनको अवश्यकता न थी. अतोऽनधिकार शंकनीय नहीं. परंतु तिनमें ईश्वरत्व न था. **'विवस्वान्मनवे प्राह'** इस वाक्यतें तिनकी पूर्व अल्पज्ञता सिद्ध होनेतें, तथापि ते देवता होनेतें, अरु शिष्ठ होनेतें परमेश्वरके अंश थे.

२ - श्रीरामको वेदकर्मकर्तृत्व था; अरु ईश्वरत्व था. जातें तिनमें मुख्यांशत्व है. शिष्टत्व नहीं.

३ - और श्रीकृष्णमें तो शिष्टत्व और ईश्वरत्व दोनोंभी है. क्यौंकि,

* **'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व'** तिनमें था. परंतु फलकी अपेक्षा आप स्वयं नहीं कीनी. और

* गीतामें **'वेदप्रामाण्याभ्युपगंतृत्व'** प्रत्यक्ष दीखता है. जातें श्रीकृष्ण **शिष्ट** थे.

* नंदपिता को जज्ञ के अधिकार का निषेध किया. ऐसा वेदप्रामाण्याभ्युपगम करके इंद्रका गर्वनाशफल, और गोवर्धनपूजा तिसका साधन, ऐसे फलसाधनांशमें भ्रांतिरहितत्व था. देवताओंके **'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व'** जीवशिष्टोंसे नहीं बनता है.

जातें, श्रीकृष्ण की शिष्टता अनादि है. और जारभावरत गोपिकाकाभी जिवंत अपवर्गसंस्थान किया. जातें, **'अन्यथाकर्तृं'** शक्ति होनेतें तिनमें **ईश्वरत्व** था.

अरु अशिष्ट जो होते है, सो अपने कर्म के समान लोकोंको करावते है. श्रीकृष्णने कही मैथुनोपदेश किसीको नहीं कऱ्या. जातें, ते **परमशिष्ट** थे.

प्रश्न १०८ :- शिष्टत्व और वेदकर्मकर्तृत्व हुवा, तो विशेष है वा नहीं? **(य६-३५)**

उत्तरः- कुछ विशेष नहीं. काहेतें, वेदकर्मकर्तृत्व नियमतें होवे

तो शिष्टसामर्थ्याभिव्यक्ति नहीं होवेगी.

प्रश्न १०९ :- तो मुख्य परमात्मा शिष्ट है वा नहीं ?

उत्तर :- हां, है. जीवोंके विषयमें 'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व' अरु तिन फलसाधनको जणावनेके लिये, **'वेदप्रामाण्याभ्युपगंतृत्व'** भी ईश्वरमें है. जातें, परमात्मा पूर्ण शिष्ट है.

प्रश्न ११० :- तो जैसा **शिष्ट लोक अपने बुरे कर्मका उपदेश नहीं करते है, अपने अच्छे कर्मका उपदेश लोकोंको करते है,** तैसा ईश्वरने कहीं कऱ्या है वा नही ?

उत्तर :- हां, कऱ्या है.-

'यान्यस्माकं सुचरितानि तान्येव त्वयोपास्यानि नो इतराणि'

श्रुत्यर्थः- 'हमारे अच्छे कर्मोको तूने ग्रहण करना. अन्योंको नहीं यह ईश्वरमुखकी श्रुति है. अतो, ईश्वर शिष्ट है, यह निश्चित है. और पूर्व षड्भगसमवायतें ईश्वरत्वभी है. यह ईश्वरत्व और शिष्टत्व दोनोंभी श्रीकृष्णमें रहते है. अतः श्रीकृष्ण पूर्णस्वरूपावताराविर्भाव है.

श्रीकृष्ण में षड्गुणैश्वर्य के लक्षण

प्रश्न १११ :- पूर्वकथित षड्भग श्रीकृष्ण में कथन करो.

उत्तर :- हे सखि !

१ - ''श्रीकृष्णस्य मुखमुरलिनादेन यस्माद्देवांगना मोहिता अभवन्'' तस्मात् तिनमें **'श्री'** नाम भग निश्चयकरके है.

२ - अरु **'यश'** का वर्णन गिरिधर कविरायने किया है.सो इस भांति है.-

कुंडलिया

'साईं एको गिरि धऱ्यो गिरिधर गिरिधर होय ।
हनूमान दुइ गिरि धऱ्यो गिरिधर कहे न कोय ॥
गिरिधर कहे न कोय हनु द्रोणागिर ले आयो ।
ताको कणक पडो एक तूट सो श्रीकृष्ण उठायो ॥
कहे गिरिधर कबिराय बडनकी बडी बढाई ।
थोडेमें जस होय जसो पुरुषकी ताई ॥'

३.१ - सुदामापृथुभक्षणतें सुवर्णनगरी प्रदान कीनी, इत्यादि **'औदार्य'** के लक्षण है.

३.२ - **'परित्राणाय साधूनां' / 'संभवामि युगे युगे'** यह **'अभयप्रदान औदार्य'** का लक्षण है. (य६-३६)

३.३ - दैत्योंको अने ऋषियोंको समान मोक्षफल दीना, यह **'अभेदौदार्य'** का लक्षण है.

३.४ - गुरूकी इच्छानुसार और माताकी इच्छानुसार पुत्रप्रदान कीना यह **'दातृत्वौदार्य'** का लक्षण है.

चतुर्विध औदार्य ऊपर कहा है. तिसमें प्रथम तो **'सामान्यौदार्य'** है. और अन्य सब औदार्योकी संज्ञायें कथन कर दीनी है.

४.१ - **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्'** यह **'व्यवस्थाकारी ज्ञान'** का लक्षण है.

४.२ - **'नमे द्वेष्योऽस्ति नमे प्रियः'** यह **'बंधनिवर्तकज्ञान'**का लक्षण है.

५.१ - भोजन छोर द्रौपदीके घर आये, अभिमान देख रासमें गुप्त भये, यह **'विषयत्यागरूप वैराग्य'** का लक्षण है.

५.२ - यादवपुरीको स्वयं छोर दिया, यह **'संगत्यागरूप वैराग्य'** का लक्षण है.

५.३ - विदुरगृह जाय यावनालान्न भक्षण किया, यह **'यदृच्छालाभ वैराग्य'** का लक्षण है.

५.४ - उग्रसेन को राज्यपर बिठाया, आप नहीं बैठे, एतत् **'इहफलभोगविराग'** लक्षण है.

५.५ - सत्यभामाके बचनसे दान गये, रुक्मिणीके बचनसे तप किया, यह **'प्रारब्धावधारण वैराग्य'** का लक्षण है.

५.६ - स्यमंतकमणि सत्राजितके कन्याकोही दिया, पारिजातक वृक्षके बिना और स्वर्गका कछु नहीं लिया, यह **'अमुत्रफलभोगविराग'** लक्षण है.

६.१ - गोपिओंको कामतें मुक्त किया / नारदको माया बताई /

आनंदका क्रीडास्थान गोलोक किया / मुखमें अनंत ब्रह्मांड दर्शाये / अपनाही रूप व्यापक करके अर्जुनको विश्वरूप बताया, यह **'पूर्णताऐश्वर्य'** का लक्षण है.

६.२ - धर्मसदनमें उच्छिष्ट पात्र निकारे / कालयवन के भीती से पलायन कीना / गांधारीका शाप अंगिकार किया / पांडवोंको स्थानस्थानमें अपने प्राणतेंभी ऊपर रक्षण किये, एतत् **'ब्रीदावधारण ऐश्वर्य** का लक्षण है.

६.३ - भोग भोगकर ब्रह्मचारी कहके प्रेत उठाया इत्यादि अवशिष्ट लीला **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-शक्ति ऐश्वर्य'** प्रदर्शक है.

प्रश्न ११२ :- हे सखि ! कुछ **'ज्ञानोपनिषदन्तर्गत'** लक्षण तुह्मारे श्रीकृष्ण में है वा नहीं ?

उत्तर :- हमारे प्रभूमें तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण, ये दोनोंभी रहते है. **(य६-३७)**

स्वरूप लक्षण

(१) - **'कृष्णाय देवकीपुत्राय'** यह 'सामवेदीय' श्रुति है.

'ब्रह्मरात्रे उपावृत्ते' ऐसी द्वापारमें रासलीला भयी.

और कलजुगमें नृसिंहमेहता तथा अस्मदादिकोंने देखी है, देखते है, और देखेंगे. एवं त्रिकालाबाध्यता होनेतें, अस्मत्प्रभू में **'सत्यता'** स्वरूप लक्षण संभवे है. अरु,

'पालिता गोपसुंदर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः' ।

इस **पद्मपुराण**वाक्यतें मेरे भरणकारी कही गये नहीं. ऐसा निश्चय है.

निजधामगमनका कथन मंदाधिकारियोंके लिये है.

अरु चरणदास प्रभु कहे है -

२६

'दिव्यदृष्टिबिन दृष्टि न आवे'

एवंभूत वृंदावनको और श्रीकृष्णको, हे सखि! तूं दिव्यदृष्टीसे जान.

(२) - गीतादिवचनतें अविद्या दूर करनेतें **'ज्ञान'** लक्षण संभवे है.

(३) - और जननीको भित्ति, स्तंभ, आकाश, पृथ्वी यह सब अपना रूप दिखावनेते / तथा सब गोपियों के समीप रास में अनंतमूर्ति बननेतें / सोलह हजार स्त्रियोंका लग्न एक समय करनेतें / अरु नारदको प्रत्येक गृह में अपना स्चरूप दिखावनेतें, **'अनंतता'** लक्षण रहे है.

(४) - अखंड रास करनेतें, और गोलोक, व्रज, और भक्तोंके हृदय, इसमें उल्लसित रहनेसे, **'आनंदतारूप'** रहे है. - एवं 'स्वरूपलक्षण' सिद्ध भया.

तटस्थलक्षण

वत्साहरणकालमें नूतन गोपालकी उत्पत्ति करनेतें / नंदको बैकुंठ बतावनेसमय सब जनका पालन बतावनेते / अरु अर्जुनको विश्वरूपमें सबका लय बनावनेतें, **'तटस्थलक्षण'** सिद्ध होवे है.

'त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो' ।

यह वसुदेवस्तुतीका तटस्थलक्षणपर श्लोक है.

सत्यज्ञानानंतानंदमात्रैकरसमूर्तयः' ।

यह ब्रह्मदेवने दर्शन किया, तबका **'स्वरूपलक्षण'** पर श्लोक है.

एवं हमारे प्रभूमें वेदोक्तलक्षणसिद्धि सिद्ध है.

प्रश्न ११३ :- **'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं'** - इस श्लोकका अर्थ तुम क्या करते हो ?

उत्तर :- माहात्म्यज्ञान और व्यापकता नहीं जानके मनुष्यरूप लौकिक व्यक्ति मानते है. तिसका निषेध इस श्लोकमें कहा है. **(य६-३८)** इसके समन्वयके लिये यह निर्णायक स्पष्ट वाक्य है:-

‘अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्’

माधुर्यभक्ति श्रीकृष्णमेंही

कारण परंपरा

प्रश्न ११४ :- तुह्मारा पूर्णावतार की भक्ति करने में क्या हेतु है? और अंशकी क्यंव नही भक्ती करते हो ?

उत्तर :- अंशमें भक्तिही नहीं संभवती है. तथापि हमारा हेतु पूंछती हो तो सुन. मै पत्नी हूं, और श्रीकृष्णको पति मानती हूं.

प्रश्न ११५ :- ऐसाही क्यंव करते हो ? अन्य वात्सल्यादि क्यंव नहीं ?

उत्तर :- समस्तविषयसमर्पणबिना द्वेषक्लेशकीनिवृत्ति होवे नहीं. और समस्तविषयसमर्पण जैसे पतीको पत्नी करे है, तथा अन्यत्र संभवे नहीं. और पतित्व तो श्रीकृष्णसिवाय अन्य किसी अवतारमें बने नहीं. जातें, मैं श्रीकृष्णकी भक्तिही परम मानती हूं.

* मन्वादिकोंमें शिष्टत्व है, जातें ते गौणांशावतार अरु आप्त है.

* श्रीरामादिकोंमें ईश्वरत्व है, अरु शिष्टत्व न्यून है. अतो अनुकरणशिक्षातें, ते हमारे पिता संभवे है.

* पति तो एक श्रीकृष्णही होते है. काहे तैं? पतीकी आज्ञापालन और तिनसे सुखप्राप्ति, यह स्त्रियोंको चाहिये.

* पितासे वा अन्योंसे सुखप्राप्ति नहीं होती है. आज्ञापालन मात्र होता है. तथा पिता रामादिक और आप्त मन्वादिक है. इसवास्ते तिनमें पूजनादि उपासना तो संभवेगी. किंतु, तहां भक्ति करना मेरेको अत्यंत दुस्तर जाता है.

* अरु श्रीकृष्ण मेरे प्रिय पति होनेतें, ‘गीता’ अरु ‘एकादश स्कंधादि’ आज्ञाका पालन, और रासक्रीडादिसे सुखप्राप्ति, यह दोनों हमको प्राप्त होनेतें, हम तिनकेही भक्तिमें परम धन्यता मानते है.

* विषयसमर्पण करनेसे **राग** निवृत्त भया,

* सुखप्राप्तीसे **द्वेष** निवृत्त भया,

* और पूर्वकथनानुसार भक्तीसे अविद्यादिक **क्लेश** निवृत्त भये,

* यह जो गौणप्रेमरूप भक्ती, सा पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ होनेपर भी निवृत्त नहीं होती है. क्यौं कि, **ब्रह्मपरमप्रेमास्पदताही भक्ति है.**

अरु जैसी गंगा समुद्रको मिलती है, तहां पानी तो अद्वैत रहता है, तोभी प्रवाहरूपसे मिलना छूटता नहीं. और **(य६-३९)** मत्स्योंको जैसी पानीमें रहके पानीकीही प्यास लगती है, तैसी ब्रह्मनिष्ठकोभी ब्रह्ममें रहके, ब्रह्मके भक्तीकीही तृषा लगती है. तामें श्रीशुकाचार्यबचन प्रमाण है. **सा तृषा अहेतुक होती है.**

भक्ति में संयोग-वियोग व्यवहार

प्रश्न ११६ :- भक्तों को कुछ प्रारब्धका डर नहीं?

उत्तर :- तिनको वियोगदशा में एकएक क्षण कल्प के समान जानेतें क्षणक्षण में तिनकी कल्पकल्पके प्रारब्धके दुःखकी निवृत्ति होती है.

परंतु तिस **वियोगदुःख में आनंदभंग नहीं होता है.**

पश्चात् सुखरूप रहा जो प्रारब्ध, सो परमेश्वरके संयोगसे भुक्त होता है. तोभी भक्तीकी तृषा बनी रहती है.

तातें, संयोगवियोगव्यवहार बनाही रहता है. परंतु अद्वैतानंदका भंग नहीं होता. अयमनुभव मेरे सखियोंकोभी होता है. और तात ऐसे कहते है :-

दोहा

अद्वैत में भक्ति है शब्दरहित सा जान ।
पतिव्रताकोही बने कांतसौख्यपहचान ॥

अरु शुकाचार्य भी ‘अहेतुक भक्ति का कारण ब्रह्मप्राप्तिके अनंतर भगवन्महिमाही है, और ओ भगवंतही जाने, हमको अनुभव मात्र है,’ ऐसा कहते है.

हे सखि ! मेरी वृत्ति अब क्षीण भयी है. तुजको ग्रहण नहीं होता, तो तूं अपने संस्थानपर जा. मेरेसे किया गया उतना समाधान कीना.

सखिवचन -

प्रश्न ११७ :- हे प्यारी ! श्रीगुरुरूपे जगज्जननी ! मैं आपकी शिष्या भई हूं. कृपा करके मुझको ग्रहण करो. अरु शुकाचार्यादिकोंने क्या कह्या, उतना सुनायके मेरे श्रवण पवित्र करो. पश्चात् मैं कुछ नहीं पूंछती हूं.

उत्तर :- हे प्यारी ! मैने तुजको पूर्वही ग्रहण किया है. अब तूं अपने बिनतीके फलको देख. शुकाचार्य कहते है :-

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथाऽप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिम् इत्थंभूतगुणो हरिः ॥ श्रीमद्‌भागवत

तर्क कहां करे ?

प्रश्न ११८ :- हे सखी ! एते वचन वृंदारकवाणीप्रचारी होनेतें; तथा सूत्रप्राय होनेतें, **(य६-४०)** तिनके स्पष्टार्थ को पूर्वपक्षनिर्धारपूर्वक मैं जानती नहीं. अतो, कृपा करके यथा मोतें अनुगम संभवे, तथा कहिये.

उत्तर :- हे सखी ! मैने इतना कह्या, तदपि तूं तर्कपूर्वक अर्थ जाननेकी बांछा करती है. तत् समीचीन नहीं. काहे तें, श्रुति स्पष्ट तर्कका निषेध करे है. **'नैषा मतिस्तर्केणापनेया' ।** ''इस मतीको तर्क करिके निष्प्रयोजन दवराना नही.'' अयं ता श्रुतीका अर्थ है.

अरु जिस श्रुती में तर्क की उपलब्धि होवे है, सो तर्क भी दुर्जनकृत-कुतर्कजाल-अपाकरणार्थ है, सिद्धान्तप्रतिष्ठापनार्थ नहीं.

जातें तूं तर्कपूर्वक भक्ति मिलानेकी वांछा मति कर. अरु दुर्जनकृत तर्कजालका खंडन इस ग्रंथमें पूर्व करेला है.

प्रश्न ११९:- गुरु और शास्त्रतें **श्रवण** होवे है.

श्रुतार्थसाधक अरु विरुद्धार्थबाधक इन युक्तियोंकरी **मनन** होवे है.

तथा अनुभवतें **निदिध्यासन** होवे है.

एवंविध श्रवणादिकोंका असंकर पूर्वाचार्योक्त होनेतें भक्तीमें तर्ककी अवश्यकता नहीं, यह कहना असंगत है.

उत्तर :- श्रवणजनित-सगुणपरमात्मावच्छिन्न-प्रत्यक्षवस्तुप्रतिष्ठ-श्रद्धाबलतें भक्ति उपजे है. तातें तिसमें मननकी अवश्यकता नहीं.

अरु वेदांतमेंभी जो मनन कह्या, सो आत्मज्ञानके अर्थ नहीं. किंतु प्रमाणअसंभावना तथा प्रमेयअसंभावनाके निवृत्तीके अर्थ कह्या है.

अरु, भक्तिमीमांसामें जो स्वप्नेश्वराचार्य भक्तीमें तर्कावश्यकता कथन करते है, सा 'श्रवणादर-रक्षणार्थ' है.

अरु, भक्त्युत्पत्त्यनंतर तो केवल श्रद्धाके बलतें परमात्माका ध्यानादि भजन मात्र करना है.

अरु, आत्मज्ञान तो भगवत्‌की कृपातें तथा गुरुरूप-संतमुख-द्वारा महावाक्योंके उपदेशतें श्रवणादरादिनिष्ठ-जनित-शुद्धचित्त पुरुषको स्वयं उपजे है.

ध्यान : कर्तृतंत्र और वस्तुतंत्र

(स्वामी विद्यारण्यजीसे समन्वय)

प्रश्न १२०:- स्वामी विद्यारण्य ने **'विवरणप्रमेयसंग्रह** में' ध्यानको कर्तृतंत्र कह्या. जातें ध्यानादिगुणोंकरी भक्तीकी नित्यता नहीं सिद्ध होवेगी. **(य६-४१)**

उत्तर :- स्वामी विद्यारण्यका अभिप्राय उपासनागतध्यानखंडनपर है. अन्यथा, **'यस्य देवे परा भक्तिः' ।** इस श्रुतीका विरोध होवेगा. और विद्यारण्य स्वामी कहते है की, ''ध्यान तो स्मृति नहीं, प्रत्यभिज्ञाभी नहीं, किंतु मनोराज्य मात्र है. क्योंकि, प्रसिद्ध शालिग्रामशीलादौ जो चतुर्भुजमूर्त्यादिकोंका आरोप किया जावे है, तिसकरिकेभी ध्यान मनोराज्य मात्र सिद्ध होवे है.'' इति.

तहां मैं पूंछती हूं, यह कथन उपासनांतर्गत ध्यानके विषय है, वा भक्त्यंतर्गत ध्यानके विषय है ?

यदि प्रथम पक्ष माने, तो हमे इष्टापत्ति है. क्योंकी **'पंचदशीके ध्यानदीप'** में' उपासनांतर्गत ध्यानकोही कर्तृतंत्रता कही प्रतीत होती है. इस स्वकथनतेंभी अविरोधपूर्वक अस्मदीयेष्टापत्ति सिद्ध होवे है.

अरु द्वितीय पक्ष माने, तो संभवता नहीं. काहे तैं, भक्तोंको शालिग्रामादि स्थानोमें चतुर्भुजाद्यारोप करकेही भक्ति उत्पन्न होवे है, यह केवल नियम नहीं.

किंतु, **कर्मफलत्यागपूर्वक भोगअलंबुद्धिसहित कर्म भगवदर्पणादि-विधिना शुद्धचित्त होनेपर आप्तलक्षण-विशिष्ट संतोंके मुखद्वारा नामरूपगुणमय-भगवल्लीला-श्रवणतें नियमकरी भक्ति उत्पन्न होवे है.** इति.

ते आप्तमुखद्वारा श्रुत भगवन्नामरूपगुण परोक्षज्ञानरूप होनेतें भ्रांति न हैतिये. एतत् कथन स्वामी विद्यारण्यने **ध्यानदीप** में कऱ्या.

परोक्षज्ञान संवादि-भ्रम नही

अरु तहां जो संवादिभ्रमवत्ता कही, सा उपासनांतर्गत ध्यानके अर्थही बनेंगी.

तथा न माने, तो **आप्तमुखद्वारा श्रुत विष्ण्वादिमूर्तियोंका परोक्षरूप तत्त्वज्ञान है, भ्रम नहीं; ब्रह्मरूपता होनेतें.** जा उत्तर वाक्यतें विरोध होवेगा.

अरु 'परोक्षज्ञानको **भ्रम** कहे,' सो बने नहीं. काहे ते, भ्रममें विषयकी असत्यता अपेक्षित है; अरु परोक्षज्ञानमें नहीं.

अरु 'परोक्षज्ञानको **संवादिभ्रम** कहे,' तोभी बने नहीं. क्यौंकि, संवादिभ्रमका फल काकतालीयन्यायवद् अनियत कह्या है, नियत कह्या नहीं.

अरु **''परोक्षज्ञानतें अविद्या के असत्त्वापादक आवरणरूपांश की निवृत्ति''** पंचदशीके तृप्तिदीपमें कही है. जातें विष्ण्वादिमूर्तियों का ब्रह्मरूपता करके **(य६-४२)** परोक्षज्ञान गुरुशास्त्र द्वारा निश्चित हेतु करके भ्रमरूप न होनेतें वस्तुतंत्र है.

अरु परोक्ष होनेतें भक्त कें असत्त्वापादक आवरणरूप अविद्यांश का निवर्तक भी है.

जो कहे की, - 'तत्परोक्षज्ञान भ्रमरूप नहीं, किंतु तिस परोक्षज्ञातमूर्तीका ध्यानही भ्रमरूप है.' तो बने नहीं. काहेतैं, परोक्षज्ञात

का ध्यान परोक्षज्ञानानंतर अपरोक्ष ज्ञानके लिये ब्रह्मविचार तथा ब्रह्मनिदिध्यासनके समान है.

'परोक्षज्ञात का ध्यान भ्रांतिरूप है,' - यह आग्रहतेंही कहे, तौं परोक्षब्रह्मज्ञानानंतर अपरोक्ष ज्ञानके अर्थ ब्रह्मविचार अरु तिसका निदिध्यासन कह्या, सोभी भ्रांतिरूप होवेगा.

अतो **साक्षात् सगुणब्रह्मका ज्ञान अरु भक्त्यंतर्गत ध्यान परोक्ष होनेतें भ्रांति नहीं.** यह स्वामीविद्यारण्यवाक्यकरीही सिद्ध होवे है.

अरु जो वादी यौं कहे की, 'परोक्षज्ञात का ध्यान ध्यातृवृत्त्यधीन होनेतें यावत् ध्यान तावत् सगुणब्रह्मज्ञान रहे है. ध्यान छूट जाय तो रहे नहीं.' - सो शंकाभी निर्मूल है. क्यौंकि, जबतक सगुणब्रह्मकी दृढता होवे नही, तहांलो ध्यान करनेका तथा छूटनेका नियम होवे है. सगुणब्रह्म के समाधि में सो नियम रहे नहीं. एवं ब्रह्मज्ञान को भी निदिध्यासनके अर्थ क्षणक्षण वृत्ति की प्रत्यावृत्ति करना अवश्य है.

अरु कहे की, 'प्रत्यावृत्ति नष्ट होनेपरभी ब्रह्मता नित्य होनेतें किमपि हानि नहीं.' तो ध्यानमें प्रत्यावृत्तीके अर्थ सगुणब्रह्मका ज्ञानमय संस्कार, ताकरिके अनुमित सगुणब्रह्मकी नित्यता होनेसेभी किमपि हानी नहीं. अतो ध्यान अनवश्यक नहीं इति.

एषा परोक्ष सगुणब्रह्मभक्ति गौणीरूप होवे है. और पराभक्तीमें सगुणब्रह्म प्रत्यक्ष होवे है. परंतु 'बिनागौणी पराभक्ति होवे नही. जातें, भगवत्परोक्षज्ञान आदौ अवश्य चाहिये.' तत् पूर्वोक्त आप्तरूप गुरु वा आगमद्वारा बने है. तहां भगवत्कृपाकीभी अपेक्षा है.

भगवत्कृपाकी अपेक्षा

'मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् वा' ॥ नारदभक्तिसूत्र

इस सूत्रकरी नारदजीने यहही निरूपण कऱ्या. सत्संगकरी भगवत्कृपा अवश्य व्हय जावे है. **(य६-४३) 'योगवासिष्ठ'** में जो भगवदनुग्रह सत्संगके प्रथम कह्या है, सो कर्मार्पणद्वारा चित्तशुद्धिरूप जाणिलेंना. अन्यथा नारदीयसूत्रविरोधापत्तेः।

जो कहे की, 'नारदीयसूत्र भक्तिपर होनेतें व्याससूत्रवत् प्रमाण

नहीं,' तौं व्यासके सद्गुरु नारद है, यह पुराणकरी सिद्ध होनेतें, गुरुवाक्य-अप्रामाण्यबलतें, शिष्य जे व्यास तिनके सूत्रभी अप्रमाण होवेंगे. यह भक्तिरहित ज्ञानवादियोंको बडा कष्ट है. अरु नारदतें भिन्न व्यासके गुरु वेदमें कोई कहे नहीं. जातें, नारदविषे वैय्यासिकगुरुत्वनिश्चायकमें पुराणप्रामाण्यबाध नहीं. इति.

ननु, 'व्याससूत्र की व्यासके बचनकरीही प्रामाण्यता हम मानते नहीं. किंतु ते सूत्र वैदिकवाक्योंका समन्वयरूप होनेतें प्रमाण मानते है'; इत्थं यदि कोई वादी कहे, तो समीचीन नही. - काहे तें, समन्वयाध्यायको छोरिके जो स्मृत्यविरोधाध्याय, सो अप्रमाण होवेगा.

अरु जो कहे की, 'समन्वयाऽविरुद्ध युक्तियोंकरी द्वितीयाध्याय-प्रामाण्य हम माने हैं;' तो मैं पूंछती हूं की, ता युक्तिया समन्वयस्थ-शब्दसमुदायके शक्तिवृत्त्यविरुद्ध है, वा लक्षणावृत्त्यविरुद्ध है ?

* तहां आद्य पक्ष माने, तो उपासनाभिमानी द्वैतमतवादियोंका वेदसमन्वय शक्तिवृत्त्यविरुद्ध भाष्यभी प्रमाण मानना परेगा.

* अरु अंत्य पक्ष माने, तो शिष्यबोधके अर्थ लक्षणावृत्ति गुरुअभ्युपगत होनेतें, तुमने जो वेदसमन्वयकी अपेक्षाकरी व्यासके वचनमात्रपर स्थापन कऱ्या दौर्बल्यदोष, तिसकरी लक्षणावृत्त्यविरुद्धा युक्तियांभी अप्रमाण होवेग्या इति.

अतो, **'श्रवणं गुरुशास्त्राभ्याम्'** अनेन न्यायेन वेदरूपशास्त्रका समन्वयरूप होनेतैं, तथा यथार्थ वक्तृलक्षणपरीक्षाघटमान आप्तरूप व्यासगुरु का बचन होनेतै, श्रवणके अर्थ ब्रह्मसूत्रकी प्रामाण्यता है. केवल वेदसमन्वयके अर्थ नहीं.

अरु आग्रहसे तैसेही माने तो, तिस समन्वयको किसकरी प्रमाणता है? हमारे तर्कको युक्त होनेतें. ऐसा कहे तौं **'तर्काऽप्रतिष्ठानात्'** इस सूत्रकी अप्रामाण्यता होवेगी. जातें यह सिद्ध भया की, सत्यवक्ता **(य६-४४)** जे व्यास, ते वेदका समन्वय अन्यथा नहीं कहेंगे, जा विश्वासकरीही 'प्रिय माता प्रिय पुत्रको विष नहीं देवेगी,' जा विश्वासके समान, तिन व्यासकथित श्रुतिसमन्वयघटित उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता

३०

है. इति.

केवल तर्कसजातीयता तौं सांख्यादिकोंमेंभी समान होनेते, - नारदीयसूत्रविरोधग्राहकवादीकी शंका निर्मूल है इति.

जभी तिस वेदसमन्वयघटित ब्रह्मसूत्रोंको आप्तश्रीगुरुरूप भगवान् व्यासबचनकरिके प्रामाण्य है, तौं पुराणप्रसिद्ध श्रीव्यासके गुरु जे नारदमुनि ते अनाप्त नहीं है. अतो आप्तवचनबलकरके नारदीयसूत्रोंकोभी प्रामाण्यता है. अरु भक्तिश्रुतियों का समन्वय भी तिस सूत्रों में - शास्त्रविश्वासारंभाधिकरणसूत्रकरी निरूपण कऱ्या है.

तथा, **'तत्संस्थस्याऽमृतत्वोपदेशात्'** इत्यादि सूत्रोंकरके शांडिल्याचार्यनें भक्तिमीमांसामेंभी भक्तिश्रुतिवाक्योंकी समन्वयघटना कीनी. इति.

जो वादी कहे की, भक्तिश्रुतिवाक्योंकाही समन्वय होनेतें प्रमाण नहीं. तो वेदांतमेंभी ज्ञानमात्र श्रुतिवाक्योंका समन्वय होनेतें प्रमाण नहीं होवेगा इति.

अरु जथार्थ में तो, यह सिद्धांत है की, भक्तिमीमांसामेंभी ज्ञानका आश्रय लिया है. अरु ज्ञानमीमांसामें उपासनावाक्योंकरिके भक्तीका आश्रय लिया है. **'अन्योन्याश्रयमित्यन्ये ।'** (नारदसूत्र) यह किसी आचार्योंका मत नारदमुनीजीने भी संग्रहित कऱ्या है.

अरु **'स्वयंफलरूपतेति ब्रह्मकुमारः ।** (नारदसूत्र) इस सूत्र में **स्वयं** शब्द है, सो भक्तीकी नित्यता के अर्थ है, ज्ञानकी उपेक्षाके अर्थ नहीं. ज्ञानकी उपेक्षा माने तौं महात्म्यज्ञानावश्यकतासूत्रतें विरोध होवेगा. इति.

महात्म्यज्ञानका लक्षण भक्तिके षड्गुणलक्षणमें पूर्व कह आई हूं. अतो सर्व विचारयुक्त हेतुतें नारदीयसूत्रोंका विरोध ग्रहण करना अनिष्ट है. जातें योगवासिष्ठवाक्यमें नारदीयसूत्रका अविरोध अवश्य चाहिये.

ध्यान में सगुण की वस्तुतंत्रता

यह नारदीयसूत्राऽविरोधमंडनरूपनिरूपण किसीको अप्रासंगिक भासेगा. अथापि विशेष विचारवानको इस ग्रंथमें सप्रासंगिक है. क्यौंकि,

या मंडनतें भक्तिमीमांसा की **(य६-४५)** पुष्टि होवे है. अरु भक्ति आविर्भूत होवे है. गुरुशास्त्रद्वारा भगवद्गुणश्रवणकी मात्र अवश्यकता है. तिस भक्तीमें श्रुत भगवद्गुणादियुक्त भगवंतका ध्यान मनमेंही होवे है. अरु बाह्य मूर्त्यादिकोंकी सेवा बाह्येंद्रिय अर्पण करनेके लिये है. **सा भक्त की मनोमयी मूर्ति आप्तवचननिविष्ट होनेतें परोक्षज्ञानरूपिणी है.**

जातें भगवद्भक्तोंका ध्यान मनोराज्यमात्र नहीं. क्योंकि, आप्त जैसा देखते है, तैसाही कथन करते हैं.

सा मूर्ति प्रथम स्वप्नमें यदा आविर्भूत होवे है, तदा **प्रत्यभिज्ञारूप** होवे है.

अरु, जागृत्में आयके मैने अपनी इष्टमूर्ति स्वप्नेमें देखी थी, ऐसे स्मरणजनित आनंदतें यदा ध्यान करे है, तदा तद् ध्यान **स्मृतिरूप** होवे है. स्मृतिरूप होनेतें तिस ध्यानके ज्ञानमें **वस्तुतंत्रता** है.

अरु, मधुसूदनोक्त स्थायी भाव, तातें ज्ञेयध्येयकी ऐक्यता बने है. जातें सगुण परमात्माभी वस्तुतंत्र है. जा अभिप्रायकरीही स्वामी मधुसूदन- सरस्वतीजीने **'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा'** इस गीताके चतुर्थाध्यायोक्त श्लोकके व्याख्यानमें, सच्चिदानंद ब्रह्महीं, मायाकी अपेक्षा नहीं करिके, सगुण ब्रह्मरूप धरे है, ऐसा निरूपण कर्‍या. तहांही सगुणाभिमानियोंका मत जो निर्युक्तिक कह्या है, सो निर्गुणपरश्रुतिविरोध जणावनेके लिये और **विष्णुस्वामीमत** खंडनके लिये बोल्या.

मधुसूदनोक्त विरोध का परिहार

घन-विरलावस्था दृष्टांतकरके सगुणनिर्गुणैक्यता-निरूपण में निर्गुणसगुणपरश्रुतिविरोध का परिहार इस ग्रंथमें पूर्व कर्‍या है. जातें मधुसूदनोक्त निर्युक्तिककथन भेदाऽभेदवादी तथा भेदवादी जे विष्णुस्वाम्यादिक तिनके मतखंडनपर है. मेरेसा अद्वैतभक्तिवादीखंडनपर नहीं. क्यौंकि, अद्वैतपूर्ण जे जीवन्मुक्त, तिनमें स्वभावसिद्धसेही भक्ति रहे है, इत्यादि गीताटीकोपोद्घात् वाक्य करके मधुसूदनसरस्वतीस्वामी मेरेही अनुकूल है. इति.

अरु निर्गुणश्रुतिविरोध भी अनद्वैतसगुणाभिमानी भक्तिवादियो में

बने है. सा अद्वैतसगुणभक्तिवादियों में नहीं. इति.

ध्यानमूर्ति की सत्यता

मनोमयी मूर्ति एकवार हृदयमें स्थापन करकेही सनत्कुमारादिक इस संसारको निवृत्त करते भये, जा भागवतोक्तिकरी, अरु, - (य६-४६)

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मनः ॥ श्वेताश्वतर

जा श्रुतिवाक्यकरी ध्यान में फलतो विलक्षणता भी नहीं. अतो स्वामीविद्यारण्योक्त **'विवरणप्रमेयसंग्रहस्थ'** दोष उपासनांतर्गत ध्यान में आवेंगे, भक्त्यंतर्गत ध्यानमें नहीं इति.

प्रश्न १२१:- स्वप्न प्रातिभासिक होनेतें जागृतमें तदंतर्गत ध्यानकी स्मृति सत्य नहीं होवेगी. जातें ध्यानभी सत्य नहीं होवेगा?

उत्तर :- जागृत में पदार्थ की सत्यता क्यौंकरी सत्य होती है, सो सुन. स्वप्न दिनदिनप्रति नूतन आवते हैतिये. अरु, जागृतके पदार्थ पूर्वदिन देखे हुये दुसरे दिन देखनेमें आवते हैतिये. जातें जागृतके पदार्थकी सत्यता प्रतीत होती है. तथा ध्यानमेंभी है. –

संतोंके मुखद्वारा श्रुत जो हरिरूप, तिसका कियत दिन जागृतमें ध्यान करिके स्वप्नमें आविर्भाव होवे है. अरु पश्चात् जागृतमें स्वप्नके स्मृतिकरी ध्यान होवे है. पुनः स्वप्नमें आविर्भाव अरु पुनः जागृतीमें स्मृतिकरी ध्यान होनेतें सत्य है इति.

अरु, ईश्वरदर्शन तथा गुरूपदेश सो स्वप्नांतर्गतभी जागृतमें सत्य होवे है, ऐसा **श्रीशंकराचार्यस्वामी 'शतश्लोकी'** में निरूपण करि आये है. अरु देवताविशेषस्वप्नका भी फल जागृत में सत्य होवे है, एवं शांकरभाष्य के तृतीयाध्याय के द्वितीयपादमें भी कह्या है.

पश्चात् कियत दिनानंतर ध्येयप्रभुका जागृतमें अविर्भाव प्रत्यक्ष होवे है. इसभांती **१.प्रत्यभिज्ञात्व, २.स्मृतिरूपत्व, ३.प्रत्यक्षत्व, ४.परोक्षज्ञानवत्व,** ध्यानमें होनेतें, सो ध्येयसगुणरूप परमात्मा वस्तुतंत्ररूप सत्य है इति.

अद्वैत भक्ति

प्रश्न १२२ :- तो फिर निर्गुणोपासकोंके मतमें तुम्हारा मत द्वैती होवेगा?

उत्तर :- निर्गुणोपासक लोक चाहे हमको द्वैती कहे, किंतु ब्रह्मनिष्ठ लोक हमको द्वैती नहीं कहेंगे क्यौंकि, अन्वयज्ञानकरी सगुण परमात्मभक्ति अद्वैत में होती है. अरु, (य६-४७)

तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वम् ॥

यस्य भासात्सर्वमिदं विभाति ॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥

यो वेद निहितं गुहायां सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र ॥

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥'

हरिरेवजगज्जगदेव हरिः ॥

इत्यादि शतशः श्रुतिस्मृति अन्वयज्ञानकीही वरिष्ठता कहतिया है इति.

गौणी और पराभक्ति

प्रश्न १२३:- भक्त्यधिकारीको उपासनाकी अवश्यकता है वा नहीं ?

उत्तर :- सत्संगतीके पूर्व, कर्मके अनंतर, मध्यकालमें उपासनाकी अवश्यकता भक्त्यधिकारी को भवतु. - वरन्, सन्मुखनिर्गत-भगवद्गुणश्रवणादरकरी भक्त्युत्पत्ति-समकालिन् वा अनंतर अवश्यकता नहीं.

काहे तें - **श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य,** जा अष्टविधगौणीभक्तिकरी **आत्मनिवेदनरूपा पराभक्ति** आपही उत्पन्न होवे है इति. इस अष्टविधभक्तीको गौणीपना पराभक्तीके

अपेक्षा कहा है.

पूर्व जो कह्या, गौणीभक्ति परोक्षज्ञानतें होती है, इसका ऐसा अर्थ नहीं जानना की गौणीभक्तीमें परमेश्वर प्रत्यक्ष होता नही. किंतु इतनाही विशेष है. गौणीभक्तीके जे सख्यादिक प्रकार है, तिनमें परमात्मा प्रत्यक्ष भी होवे, सो परोक्षध्यानसहित होता है. जैसे की, श्रीकृष्ण ईश्वर है, जा परोक्षज्ञानसहित अर्जुनको श्रीकृष्ण सख्यभक्तीमें प्रत्यक्ष भये थे.

अरु पराभक्तीमें परमात्मा अपरोक्षज्ञानसहित प्रत्यक्ष होते है. जैसे की, गीताके अनंतर परामात्मा प्रत्यक्ष व्हयकेभी श्रीकृष्ण अर्जुनको प्रत्यक्ष भये थे. इस विशेषनिरूपणकरके अवांतर तारतम्य जाणिलेना.

सो आत्मनिवेदन भी माधुर्यासक्ति, कांतासक्ति, परमविरहासक्ति, वात्सल्यासक्ति, इत्यादिरूपकरिके **अनेकरूपा** है.

प्रश्न १२४ :- आत्मनिवेदन में तो केवल अपनी प्रीतिही होवेगी. फेरी व्यापकसगुणपरमेश्वरप्रीतीकी अवश्यकता क्या है? अरु अपने-अर्थ देव की प्रीति है, इत्थं श्रुतिभी कहती है -

''न वा अरे देवानां देवाः प्रिया भवन्ति ।

आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति'' (बृहदारण्यक)

उत्तरः- केवल अपनीही प्रीति होवगी' इस बचनकरी तेरे मनमें अन्वयज्ञानरूप व्यापक आत्मप्रीति विवक्षित है ? वा देहावच्छिन्न आत्मप्रीति विवक्षित है ? - तहां प्रथम पक्ष माने तो सगुणपरमात्मप्रीतिरूप भक्ति संभवती है, यह पूर्व कह्या. क्यौंकी व्यापक आत्मप्रीतीका अरु सगुणव्यापकपरमात्मप्रीतीका अन्वयज्ञानकरी भेद है नहीं.

अरु, द्वितीय पक्ष मानेगी तो भगवद्भक्तोंकी अरु अज्ञानी जनोंकी तुल्यता होवेगी. जातें, तेरे प्रश्नका स्वीकार करना अयोग्य है.

श्रुतीमें जो अपने-अर्थ देवकी प्रीति कही, सा भगवद्भक्तमानिन् नानादेववादियोंके अनिष्टापादानके अर्थ है. **'आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति'** यह जो श्रुतीमें अनेकबचनता करी, अयं ही स्पष्टार्थ जानना. विद्यारण्य स्वामीजीने 'पंचदशीमें' आत्मप्रीतीका अरु भक्तीका

जो भेद कह्या, सो इस श्रुत्यनुकूल है, इति.

आत्मनिवेदनरूपा भक्ति

प्रश्न १२५ :- आत्मनिवेदनका मेरे हृदयकरी ग्रहण होवे, तथा संकलित निर्देश करिके कहिये.

उत्तर :- आत्मनिवेदनरूप जो भगवच्छरणत्व है, तन्मधुसूदनीमें त्रिविध कह्या.-

तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा ।
भगवच्छरणत्वं स्यात्साधनाभ्यासपाकतः ॥'

अर्थ :- १. 'मै परमात्मा का हूं,'
२. 'मेरा परमात्मा है,'
३. 'परमात्माही मैं हूं'

जाप्रकार त्रिविध आत्मनिवेदन है. तहां **प्रल्हादकी भक्ति 'तस्यैवाहं'** इस रीतीकी है. क्यौंकी, नारायणका मैं पुत्र हूं, और परमात्मा मेरा पिता है, जाप्रकार आत्मार्पणभक्ति कीनी थी. जातें, नारायणने प्रल्हादको पुत्रवत् अपने अंकोंपर लेके रक्षण कीना.

अरु, **नंदयशोदाकी भक्ति 'मेरा परमात्मा है'** जा रीतीकी थी. अतो, ब्रह्मादिकोंने स्तुतियोग्य परमात्माको अपने अंकपर लेकरही स्तनपानाद्युपचार **(य६-४९)** कीने. दावानलादिस्थानोंमें जो श्रीकृष्णकी प्रार्थना कीनी थी, सो पितृवत् जानिके कीनी थी. प्रेमका विषय एकही होनेतें व्यभिचार नहीं भया.

''एकही पुरुषको पिता अरु पति कहनेतें पितृगमनादिदोष जैसा स्त्रीको होवे है, तैसा पुत्रत्व, पितृत्व माननेमेंभी व्यभिचार संभवे है'' - यह कोई वादी कहे तो समीचीन नहीं. क्यौंकी, पति और पिता यह जीवोंमें व्यक्तिद्वय होनेतें व्यभिचार है. और ईश्वरमें पुत्रत्व तथा पितृत्वादिक एकव्यक्तिस्थानीय होनेतें व्यभिचारी नहीं.

अरु जीवोंका शरीर कर्माधीन होनेतें, विधिनिषेधके बलकरी पिताको अन्यशरीररूप पतित्वादिकोंका आकार धारण करनेके सामर्थ्यके अभावकरी एक पुरुषमें दो संबंध माननेतें स्त्रीको दोष संभवे है.

अने, ईश्वरका शरीर कर्माधीन नहीं होनेतें विधि-निषेधके अभावकरिके जैसा कोई भक्त भावना करे है, अथवा प्रणिधान करे है, तैसा संबंध भगवंतमें संभवे है; यातें व्यभिचार नहीं.

'ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥' यह भगवानने‌ही कह्या है.

१. ईश्वरप्रत्यक्षके पूर्व गौणीभक्तीमें **भावनामय ध्यान** होवे है.

२. अरु ईश्वरप्रत्यक्ष के पश्चात् गौणीभक्ति में **भावनादार्ढ्यकरी ध्यान** होवे है.

३. अरु पराभक्तीमें **प्रणिधानमय ध्यान** होवे है. एतत् अग्रे स्पष्ट होवेगा.

'स एवाहम्' जा रीतीकी तृतीय उत्तम भक्ति व्रजगोपिकाओंको प्राप्त भयी. रासमंडलमें प्रभु गौप्य होनेपर स्वयं श्रीकृष्णादि बनके लीला करनेका अधिकार आया, जातें प्रत्यक्ष है इति.

एतत् समस्त निरूपण मधुसूदनीके अठराहवे अध्यायमें कीना, तत् द्रष्टव्यम्.

चार मनोसंवेग

प्रश्न १२६:- ध्यान करनेतें प्रथम स्वप्नमें ही क्यौंकरी आविर्भाव होता है?

उत्तर :- योगवासिष्ठमें भावनाके तीन संवेग कहे हैं. मृदु, मध्य अरु तीव्र.

१. पदार्थकेउपर मन लगानेका नाम **मृदु संवेग** है.

२. पदार्थकेउपर मन लगनेका नाम **मध्य संवेग** है.

३. अरु पदार्थाकार मन होनेका नाम **तीव्र संवेग** है. (य६-५०)

१. जब मृदु संवेग रहता है, तब निद्राके समय स्मृति नहीं रहनेतें स्वप्नमें आविर्भाव होता नहीं.

२. अरु मध्य संवेगतें निद्राके समय ख्याल होनेतैं स्वप्नमें शीघ्र

आविर्भाव होता है.

३. तीव्र संवेगतें तदाकार होनेतें जागृतमें प्रत्यक्ष होता है.

४. तीव्रतर होनेतें ध्यातृध्येयकी एकता होती है. तहांभी अनिर्वचनीय प्रेम बण्या रहता है. सो अनुभवबिना शब्दका विषय नहीं. किंतु भावनामें पदार्थ परमात्माबिना अन्य न हो, यह दृढ स्मृति हितकर है.

'तीव्रसंवेगानामासन्नः समाधिलाभः'

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्'

यह पतंजलि अरु नारदके सूत्र है. ध्यातृध्येयैक्यताका नाम समाधि है. अन्य अक्षरार्थ स्पष्ट है इति. सो समाधि भक्तीतें बने है. जा प्रकारका घेरंडसंहितामें निरूपण कऱ्या. तत्स्थ प्रमाण श्लोक :-

स्वकीये हृदये ध्यायेदिष्टदेवस्य रूपकम् ।
चिंतयेद्भक्तियोगेन परमाल्हादपूर्वकम् ॥
आनंदाश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते ।
समाधिः संभवेत्तेन संभवेच्च मनोन्मनी ॥

अपने अल्प हृदयको व्यापक करनेके अर्थ **'स्वकीये हृदये'** ऐसा पद कह्या.

प्रेमके अर्थ **'इष्टदेवस्वरूपकम्'** यह पद कह्या.

अन्वयज्ञानतें आत्मनंदैक्यताके अर्थ **'परमाल्हाद'** यह पद कह्या.

अनिर्वचनीय प्रेमके अर्थ - **'भक्तियोगेन चिंतयेत्'** यह पद कह्या.

समाधि पदका अर्थ पूर्व कर आई हूं.

च कार समस्त पूर्वपक्षके निवृत्त्यर्थ है.

संभवेत् पद उत्तमपदप्राप्तीके अर्थ है.

मनोन्मनी पद विदेहमुक्तिके अर्थ है.

संभवेत् इस पदकी द्विवार आवृत्ति अन्ययोगव्यावृत्तिपूर्वक भक्ति दृढीकरणार्थ है.

यह श्लोकोंका भावार्थ है. सरलार्थ स्पष्ट होनेतें कऱ्या नहीं इति.

प्रश्न १२७ :- और किसी प्रकार भावनातें मन पदार्थाकार

होवे है वा नहीं? **(य६-५१)**

उत्तर :- हां. होता है.

'यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत्तत्स्वरूपताम् ॥ भाग.

अर्थ :- स्पष्ट. देही = जीव. सकलं = वृत्तिमात्र. धिया = निश्चयकारी. 'अन्यविषय त्यागके' यहभी 'सकल' पदका अर्थ है. अन्य अक्षरार्थ स्पष्ट.

प्रश्न १२८ :- तो फिर क्रोधादिविकार करकेभी परमेश्वरमें मन लगाना. प्रेमतें परमेश्वरमें मन लगाने का प्रयोजन नहीं.

उत्तर :- यथा, अपना मुख दर्पणमें दिखता है, तथा मूत्रमेंभी दिखता है. परंतु मूत्रमें रूप देखनेसे नेत्रोंको तो दिखता है. परंतु नासिकाको दुर्गंधतें पीडा होती है. अरु मूत्रमें मल होनेतें मुखभी स्पष्ट दिखता नहीं. और सोभी चंचलतातें अपने मुखतें विरुद्धही दिखता है. अयं दोषसमुदाय दर्पण में नहीं. अणे मुख स्थिरपूर्वक स्पष्ट दिसे है. तद्वत् दार्ष्टान्तमें भक्तिबिना क्रोधादिविकारोंसे परमात्माकार मन करनेमें अभिमानरूप दुर्गंधतें आनंदाविर्भाव होता नहीं. जातें हृदयको दुःख प्रतीत होता है. **''अभिमान मलका बीज होनेतें परमात्माका ध्यानभी स्पष्ट होता नहीं.''**

अरु प्रेमबिना मनका कर्षक कोई नहीं होनेतें तथा पौरुष्यकी दुर्बलता होनेतें क्षणक्षण व्युत्थान होता है. जातें ध्यानमें परमात्म-साक्षात्कारके बारेमें कोई अन्य सिद्धि तथा देवताकाही साक्षात्कार होनेका संभव है. निर्गुणोपासकोंको येते कष्ट भगवानने कहे है. परंतु निर्गुणोपासक यदि क्रोधादिविकाररहित हुवा, तो मेरी प्राप्तिभी तिसको कष्टतें होती है. यहभी प्रभूने कह्या. अतो सगुणपरमात्मभक्तिही वरिष्ठ है. तामेंही मन लगाना.

निर्गुणोपासना वेद में क्यों ?

प्रश्न १२९ :- निर्गुणोपासना श्रुतीमें किमर्थ कही ?

उत्तर :- जिसको घनाकार सूर्य अभ्रसे आच्छादित दिखता है,

तिसने किंचित् प्रकाशसेही दिनका अनुमान करना. तथा सगुणपरमात्मा के उपर मनुष्यत्वारोप करिकै तिसके लीलानंदमें जिसको दोष दिखते है, तिस पुरुषने व्यतिरेक करके विरलावस्थारूप **(यह्६-५२)** निराकार चैतन्यके अनुमितिप्रमासे आनंदरूप परमात्मा है, ऐसा जानिके मोक्षके अर्थ मुमुक्षा रक्षण करना. एवं **'उपवासाद् वरं भिक्षा'** न्यायतें श्रुतीमें निर्गुणोपासना कही. परंतु प्रेमपूर्वक सगुणभक्तिही वरिष्ठ है.

परमात्माके उपर क्रोधादिकोंकी करणीयता जो नारदसूत्रमें कही है, सा गौणीभक्तोंको अन्यविषयानवकाशके अर्थ, अरु पराभक्तको तो प्रणयपूर्वक कुतुहलताके अर्थ कही.

सगुण की हृदय में स्थापना और भक्ति का लक्षण

प्रश्न १३० :- परमात्मको हृदयमें स्थापन कर किस रीतीसे भक्तिका रक्षण करना, सो कहो.

उत्तर :- चित्तद्रव्यकी विषयोंकेउपर कठिनता कर सगुण परमात्मा के उपर द्रवता करनेसे हृदय में परमात्मा का स्थापन तथा भक्तीका रक्षण होई शके है.

प्रश्न १३१ :- एतदीय प्रक्रिया कृपा करिके संपूर्ण निरूपण करिये.

उत्तर :- श्रवण कर. इदं चित्त, बुद्धि तथा मनरूप करिके द्विविध होवे है. तहा मन तो पदार्थका **संकल्प** मात्र करे है. अरु बुद्धि **निश्चय** करे है. तहां 'मै हूं' जाप्रकारके निश्चयका नाम **'अहंता'** है. अरु 'यह है' जा प्रकारके निश्चयका नाम **'इदंता'** है.

रहस्य

अज्ञानांश और ज्ञानांश साथमें

या स्थानमें एतद्रहस्य है. जभी किसी पदार्थका निश्चय होता है, तिसमें अज्ञानांश और ज्ञानांश, दोनोभी रहते है. जैसे, 'अयं घट है' इस निश्चयमें घटज्ञान और घटाकार वृत्ति यह दो अंश रहे है. तहां घटज्ञान तो घटाकारवृत्त्यंशको जाने है, किंतु घटाकारवृत्त्यंश घटज्ञानको जाने नहीं. जातें सो घटाकारवृत्त्यंश जड और घटज्ञान चेतन, जाप्रकार

व्यवहार होवे है. एतन्नामही **'बुद्ध्यवच्छिन्न चित्'** ऐसा वेदांतके सिद्धांतमें **'अवच्छेदवादियों'** का मत है.

अरु सुषुप्तिस्थानमें ता बुद्धिवृत्तीका लय होवे है. जातें सो चिदवच्छेद, ता बुद्धिवृत्तीके लीनांशको जानिके, जागृतमें 'मै कुछ जानता नहीं था,' जा प्रकारका अपना अनुभव प्रकट करे है.

महाराजद्वारा आभासवाद और अवच्छेद वाद का समन्वय

जीवका स्वरूप

इसतें, कोईक वेदांती ता बुद्ध्यवच्छिन्न चेतनको मात्र अंगिकार करते नहीं. किंतु पूर्व **(यह्६-५३)** कथित जो कार्यानुमेय अज्ञान, तिसमें - **प्रतिबिंबदृष्टांतसाधित उपरक्ततारूपचेतन आभास** मात्र अंगिकार करे है. ता आभासकोही **आभासवादी** जीव माने है.

अरु **अवच्छेदवादी अवच्छिन्नमात्र** चेतनकोही जीव माने है. किंतु **श्रीज्ञानेश्वरजामत** में दोनो वादकी इसभांति ऐक्यता होवे है. -

अवच्छेद तथा आभास, एतत् द्वय औपाधिक मात्र कल्पना होनेतैं,

१- ब्रह्मदृष्टीसे जीव आभास,

२- अरु, उपाधिदृष्टीसें जीव अवच्छिन्न होवे है.

जैसे - कश्यपजप्रतिबिम्ब *कश्यपजदृष्टिकरी (कश्यपज=सूर्य) **मिथ्यारूप आभास** तथा *घटस्थजलदृष्टि करके **जलावच्छिन्न अवच्छेद** जाविध रहे है. तथा अयं जीवभी १- शुद्धचेतन करके ***मिथ्यारूप आभास**, अरु

२- बुद्ध्युपाधिकरके ***अवच्छेद,** एवंविध प्रतीत होवे है.

इस प्रक्रिया का स्पष्टिकरण प्रतिबिंबदृष्टांत से अधिक होनेते श्रीमच्छंकराचार्य तथा विद्यारण्यादिकोंने प्रतिबिंबवादकाही ग्रहण कीना.

३- अरु, बिंबके व्यापक दृष्टीसे प्रतिबिंब व्याप्य होवे है. जाप्रकार **अंशवाद-व्यवस्था** भी अस्मिन्नेव संभवति. एतत् वादत्रय औपाधिक है.

अंशावच्छेद आभास इत्यौपाधिककल्पनैः ।
जीवेशयोर्व्यवस्थास्याज्जीवानां च परस्परम् ॥'

इत्थं **'वैय्यासिकी न्यायमाला'** में **भारतीतीर्थ** ने कह्या है. इस

श्लोकका यह अर्थ है. –

जीवेश्वरकी तथा जीवोंकी परस्पर व्यवस्था है वा संकर है? जा संशयके प्राप्त भये भेदाभेदविषयक श्रुतिद्वय होनेते, जीवेश्वर तथा जीवोंका संकर है, जाविध पूर्वपक्षी कहे, तहां यह सिद्धांतका श्लोक है.

१. अंश, २. अवच्छेद अरु **३. आभास,** जाप्रकारकी औपाधिक कल्पना बुद्धिमानोंने करी है. ताकरके जीवेश्वरकी तथा जीवोंकी व्यवस्था संभवे है, संकर नहीं इति.

१०० वेदान्त संज्ञा

१- पृथक् होनेपर स्पष्टनिश्चितका नाम **व्यवस्थिति** है.

२- अरु मिश्र होनेपर अस्पष्टनिश्चितका नाम **संकर** है इति.

३- सा उपाधि, पूर्व कही **'अर्थापत्तिरूप'** अनिर्वचनीय है.

४- तिसमें जो अनुभवकरके चेतनका पूर्ववादानुसार **प्रतिबिम्ब** होवे है, सो **जीव** है.

(य६-५४)

५- अरु बिम्बभाग **ईश्वर** है.

काहेतैं, बिम्बत्व प्रतिबिम्बानुमेय होनेते आरोपित है; अरु स्वरूपसे शुद्ध है. प्रतिबिम्बके समान सकलंक अरु बद्ध नहीं. तिस बिम्बभाग में प्रतिबिम्बानुमेयता करके **आरोपितत्व** अरु स्वरूपकरके **निष्कलंकत्व,** सिद्ध होनेतें सो **बिम्बभूत परमात्मा विद्यारूप है.**

६- परतः आरोपितत्व होनेपरभी स्वरूपतो निष्कलंकत्व होनेते, तिस परमात्मामें स्वरूपका प्रमाद संभवे नहीं. याकाही नाम **विद्या** है.

७- अरु प्रतिबिम्बरूप जीवमें, आरोपितपना तथा सकलंकपना यह दोनोभी औपाधिक होनेतें परतंत्रताधिक्य करके **स्वरूपप्रमाद** संभवे है.

८- जातें तिस प्रतिबिम्बरूप जीवकी उपाधीका नाम **अविद्या** है

'मैं निष्कलंक हूं, आरोप मिथ्या है'' जाप्रकारके ज्ञानके निश्चयका नाम **अप्रमाद**,

९- अरु विपरीत ज्ञानका नाम **प्रमाद** है.

१०- यहां **'मैं'** शब्द मुक्तके अनुभवमेंसे लेकरी मुक्तमुखद्वाराही विद्यामें कहा है. सो बालबुद्धिको जणावने अर्थ है. अरु अविद्यामें मैपना स्पष्ट संभवे है इति.

११- तहां सो **मैंपना** विद्यामें भर्जित बीजके समान **अबंधकारक** है.

१२- अरु अविद्यामें अंकुरशक्त बीजके समान **बंधकारक** है.

१३- सो **अविद्याका 'मैपना'** प्रमादरूप होनेसे उपाधिरूप अनात्मा में होवे है.

१४- अरु **विद्याकृत 'मैपना'** अप्रमादरूप होनेतें आत्मा में होवे है. इति.

१५- इसकोही **अहंता** कहे है.

१६- इस अहंतामें इदंतासे चेतनका अधिक तादात्म्य होनेतें बाह्य पदार्थसे **किंचित् स्थिर** भासे है.

१७- अरु विद्याका अहंत्व **परम स्थिर** होनेते **सत्य** कहावे है.

१८- एषा उपाधिही विद्याकरी परमेश्वरका अरु अविद्याकरी जीवका **शरीर** होवे है. सा उपाधि आत्मसत्ताकरके **सत्य** प्रतीत होवे है.

१९- अरु स्वरूपसे सा उपाधि भक्ति और ज्ञाननाश्य होनेतें मिथ्या है. जा प्रकार यद्यपि है, तथापि विद्यामें ज्ञान स्वयं होनेतें नाश्यता संभवे नही अरु अविद्यामें तथा न होनेतें संभवे है. इसतेंभी **परमात्माकी स्वशरीरसत्यता** प्रतीत होवे है.

२०- बिम्बभाव यथा प्रतिबिम्बानुमेयताकरके आरोपित है, तथा विद्यात्वभी अविद्याकी अपेक्षा आरोपित है. ता अरोपितपनासे **(य६-५५)** संकररूपभी संभवे है. किंतु स्वरूपतें निष्कलंकता होनेतें बद्धता नहीं; **स्वतंत्रता** है.

२१- जातें सो **ईश्वरसंकल्प** जीवसंकल्पसे अधिक स्थिर होनेतें **सत्य** कहावे है. इति.

२२- तिस **संकल्पका फलभी जीवको** है, ईश्वरको नहीं.

२३- काहेतैं, जीव उपाधिकरके आरोपित होनेते, जीव जभी

अन्य पदार्थका संकल्प करे है, तदा अपनी न्यूनतानुभूतितैं किसी पूर्ण परमेश्वरमें दातृत्वारोप करे है. जाते, सो किया हुवा आरोपही **ईशसंकल्प** व्हयके जीवको संकल्परूप पदार्थोकी प्राप्ति करे है.

२४- और जभी अयं जीव तिस ईश्वरकाही संकल्प करे है, तदा विद्याके बलते अविद्याका नाश होनेपर **ईश्वरही व्हय जावे है.**

२५- तथापि **स्वाभाविक आत्मानंदानिर्वचनीयप्रीतिरूप भक्ति** संभवे है.

२६- जा अभिप्रायतेंही योगवासिष्ठमें **ईश्वरको जीव** कह्या. अन्यथा, अनीश्वरवादरूप नास्तिकतादोष संभव होवेगा. इयं उपाधि सुषुप्ती में **कारणरूपता** करके अरु जागृत्-स्वप्नेमें **कार्यरूपता** करके बीजरोहप्रवाह की नाई स्थित रहे है.

२७- तहां कारणरूपतामें परमात्मासे जीवका अधिक मिलाप होनेतें ईश्वरको श्रुतीने **कारणोपाधि** कह्या.

२८- अरु कार्यावस्थामें जीवका अनात्ममें अधिक तादात्म्य होनेते तिसको **कार्योपाधि** कह्या. **'कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः'।** एषा तहां श्रुति है.

२९- इयमुपाधिही **चित्त**-संज्ञक है. **स्फुरण, मन, चित्त, बुद्धि, संकल्प,** इन शब्दोंका उपाधीके स्वरूपसे तो एकही अर्थ है.

३०- अरु कार्यसे, **बुद्धि** शब्दका अर्थ निश्चय, **मन** का अर्थ संकल्प, इत्यादिरूप भिन्नार्थ है इति. – सो भिन्नार्थ कार्यावस्थामेंही बने है, कारणावस्था में नहीं.

३१- जाते कार्यदृष्टिकरके **सुषुप्ती** में बुद्धि, मन आदीकी लीन दशा कही है.

३२- अरु **विषयाभावप्रत्ययावलंबनरूप** करिके तहां **बुद्धिवृत्ति** है. जाप्रकार योगशास्त्रमें कह्या है, तहां सूत्र :-

'अभावप्रत्ययावलंबना वृत्तिर्निद्रा' - पातंजलयोगदर्शन.

वेदांतियोंने सुषुप्तीमें जो अभाव-प्रत्ययका खंडन कऱ्या, सो नैय्यायिकोंके विशेषणताज्ञानरूप अभावप्रत्ययखंडनपर तथा

अनुपलब्धिप्रमाणसिद्धिपर जाणिलेना. सो बोध स्वप्नसम विषयतें भिन्न है. ज्ञानतें **(य६-५६)** भिन्न नहीं. जाप्रकारका **सुषुप्ति** अवस्थाका निरूपण पंचदशीके 'तत्त्वदीपमें' कऱ्या है. तस्य विस्तर अच्युतरायजा कौमुदी* में द्रष्टव्यः।

(पंचदशी के संस्कृतभाष्य 'कौमुदीकार' अच्युतराय मोडक)*

३३- सा सुषुप्तिस्थ वृत्ति जभी संकल्प से देश-काल-वस्तुरूप-पदार्थकलना-स्थिती में **१.** किंचित् स्पंदरूप होवे है, तदा **अंतवाहक.** अरु **२.** दृढरूप होनेपर **आधिभौतिक** होवे है इति.

३४- तिस आधिभौतिकमें जे पदार्थ अधिक काल स्थिर रहे हैं, तिस अवस्थाका नाम **जागृत** है.

३५- अरु जे पदार्थ किंचित् काल स्थिर रहे है, तिस अवस्थाका नाम **स्वप्न** है.

३६- स्वप्न यदि अधिक काल स्थिर होवे, तो वहही **जागृत** अवस्था व्हय जावे, याप्रकारका निरूपण योगवासिष्ठमें कऱ्या है.

३७- जातें सब जगत् **स्वप्न** ही है.

३८- **जागृति** केवल **ब्रह्मज्ञानसहित भक्ति** है इति.

._____.अरु उपाधीके आधिभौतिक कार्यावस्थामें जो जागृत्स्वप्नका भेद कह्या, सो पंचदशीके अनुसार बालबुद्धिको जणावणेके अर्थ जाणिलेना.

३९- तहा सो **अंतवाहकरूप उपाधि** जो आधिभौतिक होवे है, सो सब होवे नहीं, किंतु किंचित् होवे है. सो आधिभौतिक **देह, इंद्रिये, विषय** करिके अनेक प्रकारके है, जाविध अनुभव है.

४०- याप्रकार किंचित् अंतवाहकका योन्यादिसामग्रीसे आधिभौतिक होना **जन्म** है.

४१- अरु व्याध्यादि सामग्री से आधिभौतिक का अंतवाहक होना **मरण** है.

४२- इस आधिभौतिक अवस्थामें जेते पदार्थ होते है, तिन सब पदार्थोमें जितना उपाधीका अंतवाहक अंश रहे है, तितना **अंतःकरण**

होवे है.

४३- अरु जितना उपाधीका भौतिकअंश रहे है, तितना **देहादि** होवे है.

४४- तहां सो अंतःकरण-अंश भी पाषाणवृक्षाद्यवस्था में आधिभौतिक की कठिनतासे **मूर्च्छारूप** होय रहे है.

४५- अरु पशुपक्षाद्यवस्थामें आहार- निद्रा- भय- मैथुन-मात्रज्ञानतें **अविचारी-बुद्धिरूप** होवे है.

४६- अरु मनुष्यदेवाद्यवस्थामें **विचारी-बुद्धिरूप** होवे है.

४७- अरु हिरण्यगर्भाद्यवस्थामें केवल अंतवाहकही होनेतें **महाज्ञानरूप** है इति.

४८- इस आधिभौतिक कार्यावस्थामें जितनी शरीरसे चेष्टा होवे है ताका नाम **कर्म** है. **(य६-५७)**

४९- अरु जितनी मनसे चेष्ठा होवे है ताका नाम **वासना** है.

५०- वासना जैसी जैसी आधिभौतिक अवस्थाके तरफ् **बाह्यस्थिति** दृढ होवे है, तैसी तैसी **कर्मरूप** होवे है.

५१- अरु जैसी जैसी ईश्वरके तरफ् **अंतःस्थिति** दृढ होवे है, तैसी तैसी **विद्यारूप** होवे है.

५२- अरु वासना जभी ता विद्यारूप परिणामको प्राप्त होवे है, तभी **जीव ईश्वर व्हय जावे है.**

५३- ता **कर्मनिश्चयरूप** वासना में **शुभाशुभता** है; **विद्यानिश्चयरूप** वासना में नही.

५४- जातें कर्मका फल **सुखदुःख** प्राप्त होवे है.

५५- अरु विद्याका फल केवल **सुख** ही होवे है.

५६- तहां शुभकर्मका फल, जो सर्वदा **इच्छितविषयसमाधानरूप** होता है, सोही **स्वर्ग** है.

५७- अरु शुभाशुभमिश्र कर्म का फल चिंता,समाधानरूप **मर्त्यलोक** की प्राप्ति है.

५८- अरु अशुभ कर्म का फल, जो चिंताधिक्य तथा न्यूनसमाधान, सो **नरक-भोग** है.

५९- वृक्षपाषाणाद्यवस्था में चिंताधिक्य तथा न्यून समाधान होनेतें सो **नरकरूप** ही है.

६०- अरु देवाद्यवस्था में समाधान अधिक होनेतें, **विचार** अधिक स्फुरे है.

६१- भोगदशामें **देव तथा मनुष्योंका भेद** है.

६२- विचारदशामें दोनो **समान** है.

६३- जाते विद्यारूप **वासनाका अधिकार** मनुष्य तथा देवोंकोभी है.

६४- किंतु इतना भेद है. - मनुष्यावस्थामें तो निष्काम कर्म करिके **वैराग्यके पश्चात् मुमुक्षा** संभवे है.

६५- अरु देवोंको केवल **विषयदोषदृष्टीसे** मात्र एकदम वैराग्यसे **मुमुक्षा** संभवे है.

६६- अखंडानंदका नाम **मोक्ष** है.

६७- तिसकी इच्छाका नाम **मुमुक्षा** है.

६८- **अखंडानंद** सो ब्रह्मका है. सो अंतःकरणके चंचलतासे जीवको तिरोहित है. जब अंतःकरण एकाग्र होता है, तब आविर्भूत होता है.

६९- विषयके संबंध में जब अंतःकरण एकाग्र होता है तब **विषयानंद** उद्भूत होता है.

७०- तिस आनंदके ऊपर जो प्रीति है तिसका नाम **राग** है.

७१- **सुषुप्ती** में जीवपरमात्माका तादात्म्य होनेसे **सब विषयोंसे अधिक आनंद** उपजता है. क्यौंकि, तहां अंतःकरण **अत्यंत एकाग्र** होता है.

७२- अरु समाधिअवस्था में विद्यारूपता करिके ईश्वर से एकता होनेतें **परमानंद** होता है.

७३- तिस परमानंद ऊपर जो **(य६-५८)** प्रीति तिसका नाम **भक्ति** है.

रस निष्पत्ति

७४- एवं आनंदके अभिव्यक्तीका नामही **रस** है.

७५- सो रस अंतःकरणके **एकाग्रताके आधीन** है.

७६- अरु तिस रसके अभिव्यक्ति करनेहारी विभावानुभाव-व्यभिचारीभावादि **सामग्री** है.

७७- तिस विभावानुभावव्यभिचारीभावसे अंतःकरण **एकाग्र** होवे है.

७८- तदा जिस पदार्थके ऊपर एकाग्रता होवे है, तिस **पदार्थके आश्रय** तथा **अंतःकरणाश्रयरूप चेतनकी एकता** व्हयके **आनंद** भी उपजे है.

दुःख का कारण

७९- अरु केइक पदार्थ देखकर जो **दुःख** उपजे हे, सो **अर्ध एकाग्रता** में उपजे है इति.

अथवा **दुःखका भान** होनेकी दुसरीभी रीति है. –

८०- जिस पदार्थको देखके सुख उपजे है तत् सुख पदार्थोपहित चैतन्यतें चित्तैकाग्याद्वारा उपजे है.

८१- जा सिद्धांतको नहीं जानता हुवा चिदाभास, तिन पदार्थनतेंही सुख उपजे है, जा प्रकार मानिके, तिन पदार्थनकी और एवं दृष्टि करे है की, ''या पदार्थनतेंही मैं सुखी हूं. एते पदार्थही सुखरूप है. एते पदार्थही मेरे निकट सदा रहे.'' जाप्रकार दृष्टीका आश्रय करके, तिन पदार्थनके अप्राप्तिकरणहेतु जे अन्य पदार्थ, तिनके विषे **द्वेष-**वृत्तीका आश्रय लेवे है. अरु जिन प्राप्त पदार्थनतें सुख उपजे है, तिनके ऊपर **प्रीति** राखे है.

८२- कदाचित् सो सुखहेतु प्राप्त पदार्थ किसी कारणतें अप्राप्त भया, तो पश्चात् तिसकी इच्छा करे है. जा इच्छाकाही नाम **काम** है.

८३- अरु, जे प्रिय पदार्थ के अप्राप्तिकरणहेतु अन्य पदार्थ, तिनविषे द्वेष राखिके प्रतिकार की इच्छा करे है, ता इच्छाका नाम **क्रोध** है.

८४- अरु जो प्राप्त पदार्थ है, तिनके रक्षणकी इच्छाका नाम **लोभ** है.

८५- काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंकोही भगवानने **नरकका द्वार** कह्या.

रहस्य

८६- तात्पर्य, इन तीनोंतेही **दुःखका भान** होवे है.

८७- तथापि तहां यह रहस्य है. यद्यपि एते समस्त पदार्थ स्वोपहित चैतन्यता करके चित्तैकाग्यद्वारा आनंददायक है, तथापि या प्रकारको न जाणिके **''केवल पदार्थनतें सुख उपजे है, या विपरीत ज्ञानतेंही दुःखकी प्राप्ति जीवको होवे है.''**

८८- तहां समाधीमें **(य६-५९)** आत्माकारवृत्तिरूप योग जा विधीते दुःखका निवर्तक होवे है, तैसे व्युत्थानदशामें सो **''रसानंदसमाधि''** दुःखनिवर्तक होवे है. या रसानंदसमाधि का वर्णन **घेरंडसंहिता** में करेला है; तहांते जाणिलेना.

८९- परंच रस केवल व्युत्थानदशामें सुखकू उपजावे है. तथापि अनित्य वस्तुओंके संस्कारतें बण्या **स्थायीभाव** ज्ञानके पश्चात् **तुच्छताको प्राप्त होवे** है.

९०- औ भगवत्प्रेमवशतें भया हुवा **भगवदभिव्यक्ति संस्काररूप स्थायीभाव** नित्य होणेतैं तदुत्थ **भक्तिरस व्युत्थान तथा समाधीमें भी सुखदायी है.** जातेंही आत्मामें रमण करणेहारे जे मुनि है तेभी भगवद्गुणगानमें निरत होवे है.

ज्ञान की ७ भूमिका : वासिष्ठ

९१- याका यह भाव है; **१- शुभेच्छा, २- विचारणा, ३- तनुमानसा, ४- सत्त्वापत्ति, ५- असंसक्ति, ६- पदार्थाभावनी** अरु **७- तूर्यगा.**

इन् वसिष्ठोक्त सप्त ज्ञानभूमिकाओंमे प्रथम शुभेच्छादि **तीन साधनभूमिका** होनेतैं,

९२- चौथी भूमिका वही ज्ञाननिष्ठारूप कही है. सा चतुर्थी

भूमिकाही **'आत्मारामा'** या श्लोक के पदतें कथन करेली है.

रहस्य

९३- तहां यह रहस्य है. तत्त्वज्ञानके अनंतर मनोनाश अरु वासनाक्षयतें अग्रिम असंसक्तिआदिक भूमिका साधिके जीवन्मुक्तिलाभ विद्यारण्यादिकौनें कह्या है. तदपि सो अग्रिम असंसक्त्यादि भूमि साधिके जीवन्मुक्तिही **'मुनय'** यह पद श्लोकमें धऱ्या है.

९४- (भूमिका ४) - तहां सत्त्वापत्ति भूमिकावालेकूं **'आत्माराम'** कहे है. **'मैं ब्रह्म हूं' इस निश्चयका नाम सत्त्वापत्ति है.**

९५- (भूमिका ५) - असंसक्ति भूमिकारूढ पुरुषकूं **'मुनि'** कहे है. और

९६- (भूमिका ६) - पदार्थाभावनी भूमिकारूढ पुरुषनकूं **'निर्ग्रंथ'** कहे है. किंवा असंसक्ति और पदार्थाभावनी इन दूनो भूमिओंका ग्रहण **'मुनि'** पदतें किये.

९७- (भूमिका ७) - तूर्यगा नाम सातमी भूमिकाग्रहण **'निर्ग्रन्थ'** पदतें किये,

९८- * प्रथम अर्थमें **सातमी भूमि भक्तिरूप होवे है.**

९९- * औ द्वितीय अर्थमें तिन **सारे भूमियोंका लाभ भक्तितेंही होत है.**

१००- जाविध अभिप्राय निकसे है.

हे सखी ! एवं **'आत्मारामाश्च मुनय'** इस श्लोकका अर्थ करणेतें अग्रिम उदाहृत श्लोकोंका भी अर्थ तुणें यथा कथंचित् जाणिलेना. तेरे तर्कपूर्वक किये प्रश्नके उत्तरकी इसही श्लोकमें समाप्ति है. **(य६-६०)**

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रोहि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
मेघैर्मेदुरमंबरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नंदनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमम्
राधामाधवयोर्जयंति यमुनाकूले रहः केलयः ॥
वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमार- व्यास- शुक- शाण्डिल्य- गर्ग- विष्णु- कौण्डिन्य- शेष- उद्धव- आरुणि- बलि- हनुमद्- बिभीषणादयो भक्त्याचार्याः ॥ नारदभक्तिसूत्र.

प्रऱ्हाद- नारद- पराशर- पुंडरीक-
व्यास- अंबरीष- शुक- शौनक- भीष्म- दाल्भ्यान् ।
रुक्म-अंगद-अर्जुन-वसिष्ठ-बिभीषणादीन्
पुण्यानिमान्परमभागवतान्स्मरामि ॥
ॐनमः श्रीआदिनाथाय नमो मत्स्येंद्ररूपिणे ।
गोरक्षप्रभवे गहिनीनाथायाथ निवृत्तये ॥१॥
परंब्रह्म परंधाम सच्चिदानंदविग्रहम् ।
ज्ञानेश्वरमितिख्यातं प्रणमामि गुरुं हरिम् ॥२॥

इस सब सज्जनोंकू मेरा साष्टांग प्रणिपात है. और तुभी प्रणिपात कर. और मैं लोटांगण करिके तिन संतनको मैं अपना मत यथा है तथा प्रदर्शित करती हूं.

दोहा

नहि चाहती हूं पक्वता नही मोक्षकी आस ।
तुह्मरि कृपा हरिपदक्षालनकारण रहुंगी पास ॥१॥
ज्ञानेश्वर गुरुचरणपर किया समर्पण काव्य ।
कन्याबाणी कथमपि सतां भवतु सुश्राव्य ॥२॥ (य६-६१)
अपरिमीत युक्ति कह्या हरिभक्तीको पंथ ।
श्रीज्ञानेश्वरचरणपर अर्पण किया सो ग्रंथ ॥३॥ (य६-६२)

॥ हरिः ॐ तत्सत् श्रीमत्सद्गुरुज्ञानेश्वरकृपाप्रसादेन गद्यपद्ययुतः आर्यभाषायां यथाबुद्ध्या विरचितः स्वमंतव्यांशसिद्धांततुषारः श्रीमत् सद्गुरुज्ञानेश्वरपादयोः समर्पितः ॥

०००

युगाचार्यजी को वंदन

प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबरावमहाराज का जीवनकाल १९ वे शतक के आखिर और २० वे शतक के आरंभ में था । परतंत्रता और पाश्चात्य भोगवाद का प्रभाव सारे हिंदूस्तानपर छा गया था। प्राचीन भारतीयों की विविध ज्ञानक्षेत्र की परंपराएँ, विविध संप्रदायों की परंपराएँ आदि के संबंध में भारतीय मानस संभ्रमित हो गया था । उस ब्रिटिश काल के अंधःकारयुग में सारे ज्ञानक्षेत्रों में महाराजजीने प्राचीन आर्य परंपराओं की सचाई सामने लानेके लिए सारे ज्ञानक्षेत्रों में स्वयं नया मौलिक योगदान दिया । पाश्चात्य विचारधाराओं का कठोर तार्किक रीति से खंडण किया और भारतीयों के जीन्स में छिपे हुए ज्ञानविज्ञान के वैभव को संजीवनी की गुटी चखाई ।

''प्रत्येक कलियुग में धर्मविचार की पुनर्स्थापना के लिए मैं जन्म लेता हूँ''

ऐसा महाराज स्वयं लिखते है । उसी उपलक्ष्य में विश्वके सारे धर्म वैदिक धर्म की शाखाए है ऐसा सप्रमाण सिद्ध करके सर्वधर्मसमन्वय की रीति सीखाई ।

*तत्त्वज्ञानक्षेत्र में शांकर अद्वैत को भक्ति से अलंकृत करके **''अनध्यस्तविवर्त''** का नया आयाम देकर प्राचीन परंपरा के अनुसार खंडन मंडन पद्धति से भक्तिशास्त्र की रचना की । वह भक्ति का सविस्तर विचार सब के सामने आए, यही अपेक्षा ।*

:

श्रीज्ञानेश्वर

पदाश्रित

हनुमान जयंति, कलिवर्ष ५१०३ ***कि शो र व्यास***

सर्वव्यापि समन्वय विचार

''देश के सामाजिक बंधुभाव को श्रीगुलाबरावमहाराज ने दिया हुआ तात्त्विक अधिष्ठान याने समन्वयविचार ! इसके परिणाम दूरगामी रहेंगे ।

उन्होंने विवेचन किया कि मुस्लिम, ख्रिस्ती, पारसी, बौद्ध आदि सब धर्मों के प्रमुख तत्त्व वैदिक संस्कृति मे पाये जाते है जो कि उन धर्मों से कहीं प्राचीन है.

इस दिशा में प्रबोधन हो, तो ना केवल भारतीय अपितु पुरे विश्व के सभी धर्मोंके समाजों में सामंजस्य पैदा होगा. ''

- परम पूजनीय श्री गुरुजी

धर्मान्तर

प्रश्न : सर्व धर्म समान है तो अपने धर्म में क्यों रहना ?

उत्तर : सर्व धर्म समान है तो अपने धर्म को क्यों छोडना !

जीवन – भूमिका

''आर्यों का कहना बराबर है यह सिद्ध करने बगैर मेरे को और मेरे हितचिंतकों को दुसरा कोई भी काम नही !''.

सुसंस्कारों का दान याने शिक्षण

श्रीगुलाबरावमहाराज के हिंदी ग्रंथ

(१) श्रीमहाराजके ४०६ पदसंग्रह - (पृष्ठ १००) ×

(२) स्वमंतव्यांश-सिद्धान्त-तुषार - मूल (पृष्ठ ८०) रु.१०

(३) मनोहारिणी (गीता प्रवचन) - मूल (पृष्ठ ८०) ×

(४) साधुबोध - ९३९ प्रश्नोत्तररूप (पृष्ठ २५०) रु.६०

(५) श्रीगुलाबरावमहाराज का चरित्र (पृष्ठ ६४) रु.१०

(५) श्रीमहाराज के १३० ग्रंथोंका सारांश (पृष्ठ १३२) रु.२०

(६) श्रीगुलाबरावमहाराज का भक्तिशास्त्र (पृष्ठ १२८) रु.२०

(७) '' सर्वधर्म तथा षड्दर्शन समन्वय (पृष्ठ ८०) रु.१०

(८) '' विश्वव्यापी हिंदूसंस्कृति (पृष्ठ १००) रु.२०

'गीताधर्म जगतका बायबल होगा,
यह मैं भविष्य करता हूँ.'
॥ श्रीगुलाबरावमहाराज ॥